दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जेन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

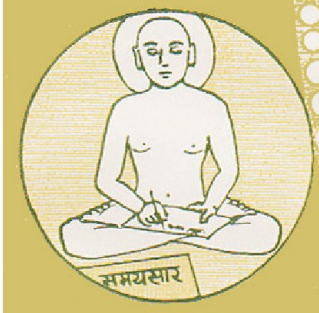

जहिं छंडिज्जइ संकप्प दुट्ठ।
भोयण वंछिज्जइ जहिं अणिट्ठ॥
तिणमित्त परिग्गह जत्थ णत्थि।
आकिंचणु सो णियमेण अत्थि॥

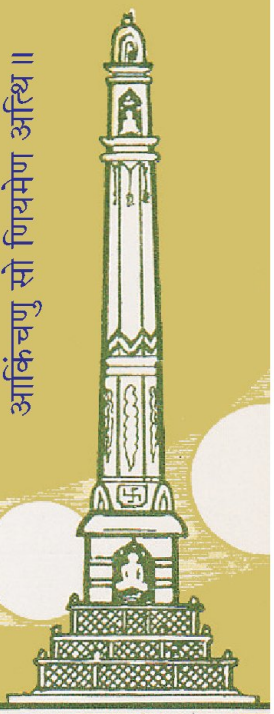

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३४ : अंक १ [३९७] जुलाई १९७८

आत्मधर्म [३९७]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ जिनवाणी मो मन भावै
२ जीवन ही बदल डाला
३ संपादकीय : उत्तम आकिंचन
४ सक्यक् स्वभाव का अनुभव करो [समयसार प्रवचन]
५ स्वभावदर्शन और विभावदर्शन [नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध संपादक की कलम से

जहाँ दुष्ट संकल्पों एवं उद्दिष्ट भोजन का त्याग है एवं तृणमात्र भी परिग्रह नहीं है, वहाँ आकिंचन धर्म नियम से होता है।

– **महाकवि रइधू**

[मूल छंद मुखपृष्ठ पर दिया गया है]

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [३९७] अंक : १

जिनवाणी मो मन भावै, या संशय तिमिर मिटावैजी॥टेक॥

नव तत्त्वनि की समझि करावै, स्वपर भेद दरसावै।
मिथ्या अलट मिटावण कारण, स्यादवादमय थावै॥
जिनवाणी मो मन भावै..... ॥१॥

चंद्र-भानु-मणि नांहि पटँतर, बाहिर तिमिर मिटावै।
बाह्य अभ्यंतर मेटै वाणी, तीन लोक सिर नावै॥
जिनवाणी मो मन भावै..... ॥२॥

तप व्रत संजम यामैं गर्भित, श्रीगुरु श्रुत में गावै।
या विन दूजो शिव पथ नांहीं, यातैं सुभ गति पावै॥
जिनवाणी मो मन भावै..... ॥३॥

रत्नत्रय याही तैं मिलि है, या विन नहिं उपजावै।
'पारस' जौलूं शिव नहिं हो है, उर तिष्ठो या चावै॥
जिनवाणी मो मन भावै..... ॥४॥

जीवन ही बदल डाला

[इस स्तंभ में उन आत्मार्थियों के महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किये जायेंगे, जिनके जीवन में आध्यात्मिक रुचि आत्मधर्म के माध्यम से जगी है।]

इस वर्ष पूज्य गुरुदेवश्री की जन्मजयंती के शुभ अवसर पर बम्बई गया तो सीमंधर जिनालय में आत्मधर्म के मराठी एवं कन्नड़ के अंकों को देखकर मनमयूर नाच उठा। भारतवर्ष की पाँच भाषाओं में एक साथ आत्मधर्म का प्रकाशित होना अत्यंत शुभ लक्षण है। पूर्व में सिर्फ हिंदी और गुजराती के रसिकजन आनंद लेते थे। अब मराठी, कन्नड़ और तमिलभाषी साधर्मीजन भी अतीन्द्रिय आत्मा की बात समझकर आनंद लेंगे, यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई।

जैनधर्म का मर्म समझने एवं परम सुखी होने के लिये आत्मधर्म का पठन-पाठन अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान कलिकाल में जहाँ अनेक पत्र-पत्रिकाएँ संसारमार्ग की रुचि कराकर पतन की ओर ले जा रही हैं, वहाँ ऐसे समय में स्वभाव की जानकारी कराने हेतु यह पत्रिका तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि का सार, भव के अभाव का सिंहनाद करनेवाले पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की अमृतमयी वाणी का प्रचार कर रही है।

भविकजन इसके द्वारा निजस्वभाव का आनंद लें—ऐसी परमोत्कृष्ट भावना रखनेवाले डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, अकथ एवं अनुपम पुरुषार्थ करके सभी मुमुक्षुजनों को अमृत रसपान करा रहे हैं। हम सभी मुमुक्षुजनों को उनके ऊपर गर्व है।

इस पत्रिका की यह विशेषता है कि जहाँ इसमें प्रथम भूमिकावालों के लिये धर्म का मर्म समझने की सरल शैली है; वहाँ तत्त्व के सूक्ष्म मर्मवालों के लिये तो यह प्राणप्रिय है ही।

यह हमारा परम सौभाग्य है कि गुरुदेवश्री ने दिव्यध्वनि का सार सरल रीति से जगत के समक्ष रखा है एवं गुरुदेवश्री के मंतव्य को सरल भाषा में आत्मधर्म के द्वारा बताया जा रहा है। हम भावना करते हैं कि भारत की अन्य भाषाओं के अतिरिक्त आत्मधर्म अंग्रेजी में भी निकले ताकि विश्व के सभीजन धर्म के मर्म को समझ सकें।

मैं डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के इस प्रयास की सराहना करता हूँ। उनका मार्गदर्शन सदैव इसीप्रकार से मिलता रहे, ऐसी मांगलिक कामना है।

— पदमचंद जैन सर्राफ, आगरा (उ०प्र०)

सम्पादकीय

उत्तम आकिंचन | एक अनुशीलन

ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा को छोड़कर किंचित्मात्र भी परपदार्थ तथा पर के लक्ष्य से आत्मा में उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेष के भाव आत्मा के नहीं हैं—ऐसा जानना, मानना और ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा के आश्रय से उनसे विरत होना, उन्हें छोड़ना ही उत्तम आकिंचनधर्म है।

आकिंचन और ब्रह्मचर्य को दशधर्मों का सार एवं चतुर्गति दु:खों से निकालकर मुक्ति में पहुँचा देनेवाला महानधर्म कहा गया है।

आकिंचन, ब्रह्मचर्य धर्म दश सार हैं।
चहुँगति दु:खतैं काढ़ि मुकति करतार हैं॥[१]

वस्तुत: आकिंचन और ब्रह्मचर्य एक सिक्के के दो पहलू हैं। ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा को ही निज मानना, जानना और उसी में जम जाना, रम जाना, समा जाना, लीन हो जाना ब्रह्मचर्य है और उससे भिन्न परपदार्थों एवं उनके लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले चिद्विकारों को अपना नहीं मानना, नहीं जानना और उनमें लीन नहीं होना ही आकिंचन है।

यदि स्वलीनता ब्रह्मचर्य है तो पर में एकत्वबुद्धि और लीनता का अभाव आकिंचन है। अत: जिसे अस्ति से ब्रह्मचर्य धर्म कहा जाता है, उसे ही नास्ति से आकिंचन धर्म कहा गया है। इसप्रकार स्व-अस्ति ब्रह्मचर्य है और पर की नास्ति आकिंचन।

ब्रह्मचर्य धर्म की चर्चा तो स्वतंत्ररूप से होगी ही, यहाँ तो अभी आकिंचन धर्म के संबंध में विचार अपेक्षित है।

जिसप्रकार क्षमा का विरोधी क्रोध, मार्दव का विरोधी मान है; उसीप्रकार आकिंचन धर्म का विरोधी परिग्रह है अर्थात् आकिंचन के अभाव को परिग्रह अथवा परिग्रह के अभाव

१. दशलक्षण पूजन, स्थापना

को आकिंचन धर्म कहा जाता है। अत: आकिंचन का दूसरा नाम अपरिग्रह भी हो सकता है। जिस परिग्रह के त्याग से आकिंचन धर्म प्रकट होता है, पहले उसे समझना आवश्यक है।

परिग्रह दो प्रकार का होता है—आभ्यंतर और बाह्य।

आत्मा में उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेषादिभावरू आभ्यंतर परिग्रह को निश्चयपरिग्रह और बाह्य परिग्रह को व्यवहार-परिग्रह भी कहा जाता है। जैसा कि 'धवल' में कहा है—

'ववहारणयं पडुच्च खेत्तादी गंथो, अब्भंतरगंथकारणत्तादो। एदस्स परिहरणं णिग्गंथत्तं। णिच्छयणयं पडुच्च मिच्छत्तादी गंथो, कम्मबंधकारणत्तादो। तेसिं परिच्चागो णिग्गंथत्तं।'[१]

व्यवहारनय की अपेक्षा से क्षेत्रादिक ग्रंथ हैं, क्योंकि वे आभ्यंतरग्रंथ के कारण हैं, इनका त्याग करना निर्ग्रंथता है। निश्चयनय की अपेक्षा से मिथ्यात्वादि ग्रंथ हैं, क्योंकि वे कर्मबंध के कारण हैं और उनका त्याग करना निर्ग्रंथता है।

इसप्रकार निर्ग्रंथता अर्थात् आकिंचन धर्म के लिये आभ्यंतर और बाह्य दोनों प्रकार के परिग्रह का अभाव (त्याग) आवश्यक है। यही निश्चय-व्यवहार की संधि भी है।

आभ्यंतर परिग्रह चौदह प्रकार के होते हैं—

१. मिथ्यात्व, २. क्रोध, ३. मान, ४. माया, ५. लोभ, ६. हास्य, ७. रति, ८. अरति, ९. शोक, १०. भय, ११. जुगुप्सा (ग्लानि), १२. स्त्रीवेद, १३. पुरुषवेद, और १४. नपुंसकवेद।

बाह्य परिग्रह दश प्रकार के होते हैं—

१. क्षेत्र (खेत), २. मकान, ३. चाँदी, ४. सोना, ५. धन, ६. धान्य, ७. दासी, ८. दास, ९. वस्त्र, १०. बर्तन।

इसप्रकार परिग्रह कुल चौबीस प्रकार के माने गये हैं। कहा भी है—

'परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करें मुनिराज जी।'२

उक्त चौबीस प्रकार के परिग्रह के त्यागी मुनिराज उत्तम आकिंचनधर्म के धारी होते हैं।

जब भी परिग्रह या परिग्रहत्याग की चर्चा चलती है—हमारा ध्यान बाह्य परिग्रह की

१. धवला पुस्तक ९, खंड ४, भाग १, सूत्र ६७, पृष्ठ ३८३

२. दशलक्षण पूजन, उत्तम आकिंचन का छंद

ओर ही जाता है; मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभादि भी परिग्रह हैं—इस ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। क्रोध, मान, माया, लोभ की जब भी बात आयेगी तो कहा जायेगा कि ये तो कषायें हैं; पर कषायों का भी परिग्रह होता है, यह विचार नहीं आता।

जब जगत क्रोध-मानादि को भी परिग्रह मानने को तैयार नहीं तो फिर हास्यादि कषायों को कौन परिग्रह माने ?

पाँच पापों में परिग्रह एक पाप है और हास्यादि कषायें परिग्रह के भेद हैं। पर जब हम हँसते हैं, शोकसंतप्त होते हैं; तो क्या यह समझते हैं कि हम कोई पाप कर रहे हैं या इनके कारण हम परिग्रही हैं।

बहुत से परिग्रह-त्यागियों को कहीं भी खिलखिलाकर हँसते, हड़बड़ाकर डरते देखा जा सकता है। क्या वे यह अनुभव करते हैं कि यह सब परिग्रह है ?

जयपुर में लोग भगवान की मूर्तियाँ लेने आते हैं और मुझे कहते हैं कि हमें तो बहुत सुंदर मूर्ति चाहिये, एकदम हँसमुख। मैं उन्हें समझाता हूँ कि भई ! भगवान की मूर्ति हँसमुख नहीं होती। हास्य तो कषाय है, परिग्रह है और भगवान तो अकषायी, अपरिग्रही हैं; उनकी मूर्ति हँसमुख कैसे हो सकती है ? भगवान की मूर्ति की मुद्रा तो वीतरागी शांत होती है। कहा भी है—'जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।'[१]

'छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नाशा पर धरैं।'[२]

यह भी बहुत कम लोग जानते हैं कि सब पापों का बाप लोभ भी एक परिग्रह है। शब्दों में जानते भी हों तो यह अनुभव नहीं करते कि लोभ भी एक परिग्रह है अन्यथा यश के लोभ में दौड़-धूप करते तथाकथित परिग्रह-त्यागी दिखायी नहीं देते।

घोर पापों की जड़ मिथ्यात्व भी एक परिग्रह है। एक नहीं, नंबर एक का परिग्रह है—जिसके छूटे बिना अन्य परिग्रह छूट ही नहीं सकते—इस ओर भी कितनों का ध्यान है ? होता तो मिथ्यात्व का अभाव किये बिना अपरिग्रही बनने के यत्न नहीं किये जाते।

परिग्रह सबसे बड़ा पाप है और आकिंचन सबसे बड़ा धर्म। जगत में जितनी भी हिंसा,

१. पंडित दौलतरामजी कृत देव-स्तुति

२. लघु दर्शनपाठ

झूठ, चोरी, कुशील प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं—उन सबके मूल में परिग्रह है। जब मोह-राग-द्वेष आदि सभी विकारी भाव परिग्रह हैं तो फिर कौन सा पाप बच जाता है जो परिग्रह की सीमा में न आ जाता हो। मोह-राग-द्वेष भावों की उत्पत्ति का नाम ही हिंसा है। कहा भी है—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिहिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥[१]

राग-द्वेष-मोह आदि विकारी भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है और उन भावों का उत्पन्न नहीं होना ही अहिंसा है।

झूठ, चोरी, कुशील में भी राग-द्वेष-मोह ही काम करते हैं। अतः राग-द्वेष-मोहमय होने से परिग्रह सबसे बड़ा पाप है।

क्षमा तो क्रोध के अभाव का नाम है। इसप्रकार मार्दव मान के, आर्जव माया के तथा शौच लोभ के अभाव का नाम है। पर आकिंचनधर्म—क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद सभी कषायों के अभाव का नाम है। अतः आकिंचन सबसे बड़ा धर्म है।

आज तो बाह्य परिग्रह में भी मात्र रुपये-पैसे को ही परिग्रह माना जाता है; धन-धान्यादि की ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता। किसी भी परिग्रह-परिमाणधारी अणुव्रती से पूछिये कि आपका परिग्रह का परिमाण क्या है? तो तत्काल रुपयों-पैसों में उत्तर देंगे। कहेंगे कि—दश हजार या बीस हजार। और .... ? यह पूछेंगे तो कहेंगे—और क्या?

मैं जानना चाहता हूँ कि क्या रुपया-पैसा ही परिग्रह है और कोई परिग्रह नहीं? धन-धान्य, क्षेत्र-वास्तु, स्त्री-पुत्रादि बाह्य परिग्रहों की भी बात नहीं, तो क्रोध-मानादि अंतरंग परिग्रहों को कौन पूछता है?

जब एक परिग्रह-परिमाणधारी से पूछा गया कि परिग्रह तो चौबीस होते हैं, आपने तो चौबीसों ही का परिमाण किया होगा? तब वे आश्चर्यचकित से बोले—नहीं, हमने तो सिर्फ रुपयों का ही परिमाण किया है, आप बताओ तो चौबीस का कर लेंगे।

मैंने कहा—सो तो ठीक है, पर आपने कभी विचार भी किया है कि चौबीस परिग्रहों

१. आचार्य अमृतचंद्र : पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, छंद ४४

का परिमाण हो भी सकता है या नहीं ?

तब वे तत्काल कहने लगे—क्यों नहीं हो सकता, सब हो सकता है, दुनिया में ऐसा कौनसा काम है जो आदमी से न हो सके ? आदमी चाहे तो सब कुछ कर सकता है।

मैंने कहा—ठीक, आपको चौबीस परिग्रहों के नाम तो आते ही होंगे ? पहला परिग्रह 'मिथ्यात्व' है, उसका परिमाण हो सकता है क्या ? यदि 'हाँ' तो फिर कितना मिथ्यात्व रखना और कितना छोड़ना ? क्या मिथ्यात्व भी कुछ रखा और कुछ छोड़ा जा सकता है ? वे भौंचक्के-से देखते रहे; क्योंकि मिथ्यात्व भी एक परिग्रह है, यह उन्होंने आज ही सुना था।

अस्तु ! मैंने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—भाई ! मिथ्यात्व के पूर्णतः छूटे बिना तो व्रत होते ही नहीं, अतः परिग्रहपरिमाणव्रत लेनेवाले के मिथ्यात्व है ही कहाँ जो उसका परिमाण किया जाये।

इसीप्रकार क्रोध, मान, माया, लोभादि विकारी भावरूप अंतरंग परिग्रहों का भी परिमाण कैसे और कितना किया जाये—इसका भी विचार किया कभी ?

चौथे गुणस्थान की अपेक्षा पंचम गुणस्थान में आत्मा का अधिक व उग्र आश्रय होने से अनंतानुबंधी एवं अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि का अभाव हो जाता है तथा किंचित् कमजोरी के कारण प्रत्याख्यानावरण एवं संज्वलन क्रोधादि का सद्भाव बना रहता है, तदनुसार धन-धान्यादि बाह्य परिग्रह की सीमा बुद्धिपूर्वक की जाती है।

इस संपूर्ण प्रक्रिया का नाम ही परिग्रहपरिमाणव्रत है।

जन-सामान्य को इन चौबीस परिग्रहों की तो खबर नहीं, रुपये-पैसे को ही अपनी कल्पना से परिग्रह मानकर उसकी ही उल्टी-सीधी मर्यादा करके अपने को परिग्रह-परिमाणव्रती मान लेते हैं।

जिन रुपयों-पैसों को जगत परिग्रह माने बैठा है, वह अंतरंग परिग्रह तो है ही नहीं, पर धन-धान्यादि बाह्य परिग्रहों में भी उसका नाम नहीं है। वह तो बाह्य परिग्रहों के विनिमय का कृत्रिम साधन मात्र है। उसमें स्वयं कुछ भी ऐसा नहीं, जिसके लोभ से जगत उसका संग्रह करे। यदि उसके माध्यम से धन-धान्यादि भोग सामग्री प्राप्त न हो तो उसे कौन समेटे ? दश हजार का नोट अब बाजार में नहीं चलता तो अब उसे कौन चाहता है ? जगत की दृष्टि में

उसकी कीमत तभी तक है, जब तक वह धन-धान्यादि बाह्यपरिग्रहों की प्राप्ति का साधन है। साधन में साध्य का उपचार करके ही वह परिग्रह कहा जा सकता है, पर चौबीस परिग्रहों में नाम तक न होने पर भी आज यह पच्चीसवाँ परिग्रह ही सब कुछ बना हुआ है।

यदि रुपये-पैसे को ही परिग्रह मानें तो फिर देवों, नारकियों और तिर्यंचों में तो परिग्रह होगा ही नहीं, क्योंकि उनके पास तो रुपया-पैसा देखने में ही नहीं आता। उनमें तो मुद्रा का व्यवहार ही नहीं है, उन्हें इस व्यवहार का कोई प्रयोजन भी नहीं है; पर उनके परिग्रह का त्याग तो नहीं है।

इसीप्रकार धन-धान्यादि बाह्य परिग्रहों को ही परिग्रह मानें तो फिर पशुओं को अपरिग्रही मानना होगा, क्योंकि उनके पास बाह्य परिग्रह देखने में नहीं आता। धन-धान्य, मकानादि संग्रह का व्यवहार तो मुख्यत: मनुष्य व्यवहार है। मनुष्यों में भी पुण्य का योग न होने पर धन-धान्यादि बाह्य परिग्रह कम देखा जाता है तो क्या वे परिग्रह-त्यागी हो गये? नहीं, कदापि नहीं।

जब आत्मा के धर्म और अधर्म की चर्चा चलती है तो उनकी परिभाषायें ऐसी होनी चाहिये कि वे सभी आत्माओं पर समानरूप से घटित हों। यही कारण है कि आचार्यों ने अंतरंग परिग्रह के त्याग पर विशेष बल दिया है।

'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में कहा है —

बाहिरगंथविहीणा दलिद्दमणुवा सहावदो होंति।
अब्भंतर-गंथं पुण ण सक्कदेको विछंडेदं ॥३८७॥

बाह्यपरिग्रह से रहित दरिद्री मनुष्य तो स्वभाव से ही होते हैं, किंतु अंतरंग परिग्रह को छोड़ने में कोई भी समर्थ नहीं होता।

'अष्टपाहुड़ (भावपाहुड़)' में सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द लिखते हैं —

भावविशुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
वाहिरचाओ विहलो अब्भतरगंथजत्तस्स ॥३॥

बाह्य परिग्रह का त्याग भावों की विशुद्धि के लिये किया जाता है, परंतु रागादिभावरूप अभ्यंतर परिग्रह के त्याग बिना बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल है।

बाह्य परिग्रह त्याग देने पर भी यह आवश्यक नहीं कि अंतरंग परिग्रह भी छूट ही जायेगा। यह भी हो सकता है कि बाह्य में तिल-तुषमात्र भी परिग्रह न दिखायी दे, परंतु अंतरंग में चौदहों परिग्रह विद्यमान हों। द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि मुनियों के यही तो होता है। प्रथम गुणस्थान में होने से उनमें मिथ्यात्वादि सभी अंतरंग परिग्रह पाये जाते हैं, पर बाह्य में वे नग्न दिगम्बर होते हैं।

'भगवती आराधना' में स्पष्ट लिखा है—

अब्भंतरसोधीए गंथे णियमेण बाहिरे च यदि।
अब्भंतरमइलो चेव बाहिरे गेण्हदि हु गंथे॥१९१५॥
अब्भंतरसोधीए बाहिरसोधी वि होदि णियमेण।
अब्भंतरदोसेण हु कुणदि, णरो बाहिरे दोसे॥१९१६॥

अंतरंग शुद्धि होने पर बाह्य परिग्रह का नियम से त्याग होता है। अभ्यंतर अशुद्ध परिणामों से ही वचन और शरीर से दोषों की उत्पत्ति होती है। अंतरंग शुद्धि होने से बहिरंग शुद्धि भी नियम से होती है। यदि अंतरंग परिणाम मलिन होंगे तो मनुष्य शरीर और वचनों से भी दोष उत्पन्न करेगा।

वस्तुतः बात तो यह है कि धन-धान्यादि स्वयं में कोई परिग्रह नहीं है; बल्कि उनके ग्रहण का भाव, संग्रह का भाव—परिग्रह है। जब तक परपदार्थों के ग्रहण या संग्रह का भाव न हो तो मात्र परपदार्थों की उपस्थिति से परिग्रह नहीं होता, अन्यथा तीर्थंकरों के तेरहवें गुणस्थान में होने पर भी देह व समवसरणादि विभूतियों का परिग्रह मानना होगा जबकि अंतरंग परिग्रहों का सद्भाव दशवें गुणस्थान तक ही होता है।

सभी बातों का ध्यान रखते हुए जिनागम में परिग्रह की परिभाषा इसप्रकार दी गयी है—

'मूर्च्छा परिग्रहः'[१]

मूर्च्छा परिग्रह है।

मूर्च्छा की परिभाषा आचार्य अमृतचंद्र इसप्रकार करते हैं —

१. आचार्य उमास्वामी : तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ७, सूत्र १७
२. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, छंद १११

'मूर्च्छा तु ममत्वपरिणामः'[१]

ममत्व परिणाम ही मूर्च्छा है।

प्रवचनसार की तात्पर्यवृत्ति टीका में (गाथा २७८ की टीका में) आचार्य जयसेन ने लिखा है—

'मूर्च्छा परिग्रहः' इति सूत्रे यथाध्यात्मानुसारेण मूर्च्छारूपरागादिपरिणामानुसारेण परिग्रहो भवति, न च वहिरंगपरिग्रहानुसारेण।'

मूर्च्छा परिग्रह है—इस सूत्र में यह कहा गया है कि अंतरंग इच्छारूप रागादि परिणामों के अनुसार परिग्रह होता है, बहिरंग परिग्रह के अनुसार नहीं।

आचार्य पूज्यपाद तत्त्वार्थसूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि में लिखते हैं —

'ममेदंबुद्धिलक्षणः परिग्रहः'[१]

यह वस्तु मेरी है—इसप्रकार का संकल्प रखना परिग्रह है।

परिग्रह की उपर्युक्त परिभाषा और स्पष्टीकरणों से परपदार्थ स्वयं में कोई परिग्रह नहीं है—यह स्पष्ट हो जाता है। परपदार्थों के प्रति जो हमारा ममत्व है, राग है—वास्तव में तो वही परिग्रह है। जब परपदार्थों के प्रति ममत्व छूटता है तो तदनुसार बाह्य परिग्रह भी नियम से छूटता ही है। किंतु बाह्य परिग्रह के छूटने से ममत्व के छूटने का नियम नहीं है—क्योंकि पुण्य के अभाव और पाप के उदय में परपदार्थ तो अपने आप छूट जाता है, पर ममत्व नहीं छूटता; बल्कि कभी-कभी तो और अधिक बढ़ने लगता है।

परपदार्थ के छूटने से कोई अपरिग्रही नहीं होता; बल्कि उसके रखने का भाव, उसके प्रति एकत्वबुद्धि या ममत्व परिणाम छोड़ने से परिग्रह छूटता है—आत्मा अपरिग्रही अर्थात् आकिंचनधर्म का धनी बनता है।

शरीरादि परपदार्थों और रागादि चिद्विकारों में एकत्वबुद्धि, अहंबुद्धि ही मिथ्यात्व नामक प्रथम अंतरंग परिग्रह है। जब तक यह नहीं छूटता तब तक अन्य परिग्रहों के छूटने का प्रश्न ही नहीं उठता। पर इस मुग्ध जगत का इस ओर ध्यान ही नहीं है। [उत्तरार्द्ध अगले अंक में]

१. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय ६, सूत्र १५

सम्यक्स्वभाव का अनुभव करो

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथराज समयसार की अमृतचंद्राचार्यकृत 'आत्मख्याति' टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आये हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा १४वीं की टीका में समागत कलश नं० ११ एवं १२ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी, स्फुटमुपरितरंतोप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समंतात्, जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥११॥

हे जगत के प्राणियों! इस सम्यक्स्वभाव का अनुभव करो कि जिसमें यद्यपि यह बद्धस्पृष्टादिभाव स्पष्टरूप से उस स्वभाव के ऊपर तैरते हैं तथापि वे उसमें प्रतिष्ठा नहीं पाते; क्योंकि द्रव्यस्वभाव तो नित्य और एकरूप है और ये सब अनित्य और अनेकरूप हैं, पर्याय द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करतीं—ऊपर ही रहती हैं। यह द्रव्यस्वभाव सब अवस्थाओं में प्रकाशमान है। ऐसे स्वभाव का मोहरहित होकर सारा जगत अनुभव करे।

आचार्यदेव संबोधन करते हैं कि हे जगत के प्राणियों! जिसमें बद्धस्पृष्टादिभाव प्रतिष्ठा नहीं पाते ऐसे सम्यक्स्वभाव का अनुभव करो, अंतर्मुख होकर उसका वेदन करो। बद्धस्पृष्टादिभाव आत्मा के ज्ञानानंदस्वभाव के ऊपर तैरते हैं, स्वभाव में उनकी प्रतिष्ठा नहीं है।

यहाँ सम्यक्स्वभाव का अनुभव करने की प्रेरणा दी है। आत्मा को समझना ही सच्ची क्रिया है। आत्मा एक समय में अनंत गुणों का पिण्ड है, परंतु अभेदस्वभाव में अनंतगुणों का भेद नहीं दिखता। बद्धस्पृष्टादिभाव पर्याय में हैं अवश्य, परंतु नित्यएकरूप ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा में उनका अभाव है। बद्धस्पृष्टादिभाव हैं—ऐसा कहकर उनका अस्तित्व बताया है और नित्यएकरूप द्रव्यस्वभाव में नहीं हैं—ऐसा कहकर नास्तित्व भी बता दिया है।

जैसे पानी के ऊपर तेल की बूँद तैरती रहती है परंतु वह पानी के भीतर नहीं जा सकती; इसीप्रकार कर्म के संबंध से होनेवाले मोह-राग-द्वेषभाव शुद्धज्ञानघन स्वभाव में प्रवेश को प्राप्त नहीं होते। आत्मा को पर और पुण्य-पाप के विकार से भिन्न स्वभाव से देखा जाए तो बंध और

संयोगीभाव नित्यशुद्धस्वभाव से स्पष्टत: भिन्नरूप में ऊपर ही ऊपर दिखायी देते हैं, अर्थात् उन्हें स्वभाव में आधार प्राप्त नहीं होता। इसलिये वे शोभा या स्थिरता को प्राप्त नहीं होते।

यदि नित्यस्थायी, अविकारी, ध्रुव—और अज्ञानावस्था में होनेवाले क्षणिक मलिनभाव एकमेक हो गये हों तो मलिनभाव स्वभाव से अलग नहीं हो सकते और स्वाभाविक निर्मलगुणों का नाश हो जायेगा, किंतु स्वभाव कभी विकाररूप नहीं होता।

त्रिकाल निर्मल शुद्धस्वभाव और वर्तमान अवस्था—दोनों को यथार्थत: जानकर अवस्था का लक्ष्य गौण करके शुद्धनय को मुख्य करके पूर्ण शुद्धात्मा की श्रद्धा करना, उसी का लक्ष्य करना और उसमें एकाग्र अनुभवरूप स्थिर होना—यही चैतन्य का कर्तव्य है, इसी में चैतन्य की शोभा है। पुण्य-पाप के भावों को अपना मानकर उसका कर्ता होने में चैतन्य की शोभा नहीं है।

त्रिकालज्ञायकस्वभाव में विकार की नास्ति होने से रागादि भावों को स्वभाव में स्थान नहीं मिलता। विकार के आधार से आत्मा का गुण प्रगट नहीं होता, क्रोधादिभाव क्षणिकअवस्थामात्र में होने से वे क्षण भर में दूर किये जा सकते हैं। पहले सच्ची श्रद्धा के बल से उन भावों को गौण करके दृष्टि में नाश किया जाता है; पश्चात् स्वभाव में एकाग्रतारूप चारित्र के बल से उनका संपूर्ण नाश होता है। शुद्ध, अविकारी, त्रिकालस्थायी, अखंड, ज्ञायकस्वभाव में उन क्रोधादि भावों को आधार नहीं मिलता और स्वभाव में उनकी शोभा नहीं है।

पुण्य-पाप की वृत्ति अंतरंगध्रुवस्वभाव से बाहर दौड़ती है इसलिये वह क्षणिक-उत्पन्नध्वंसी है। नित्य अस्तिस्वभाव की प्रतीति से पुण्य-पाप के विकारी भाव दूर हो सकते हैं, इसलिये पहले श्रद्धा में शुद्धस्वभाव की नि:शंक श्रद्धा करना चाहिये अर्थात् मैं पूर्णस्वभावी नित्य अविकारी हूँ, ऐसा निश्चय करना चाहिये।

जैसे सोने की, अंगूठी के रूप में बाह्य आकृति है वह सोने के स्वभाव में प्रविष्ट नहीं हो जाती। यदि सोना स्वभाव से ही उस अंगूठीरूप में हो जाये तो वह कभी दूसरे आकार में नहीं बदल सकेगा, किंतु ऐसा नहीं होता। इसीप्रकार आत्मा पर्यायभेद जितना नहीं है। संसार और मोक्ष दोनों अवस्था के भेद हैं, आत्मा इन भेदोंरूप नहीं होता। अखंड और खंड दोनों का ज्ञान करके अखंडध्रुवस्वभाव का लक्ष्य करने से स्वभाव के बल से क्रमश: विकल्प टूटकर

शुद्धश्रद्धा और ज्ञान प्रगट होता है तथा क्रमशः स्थिरतारूप चारित्र प्रगट होता है।

द्रव्यस्वभाव तो नित्यएकरूप है और बद्धस्पृष्टादिभाव अनित्य हैं, अनेकरूप हैं। पर्याय द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करतीं, ऊपर ही रहती हैं। 'मैं नित्यध्रुव अखंडस्वभावी हूँ' ऐसी प्रतीति करनेवाला अल्पकाल में ही राग-द्वेष का नाश करके पूर्ण पवित्र हो जाता है।

यह अपूर्व बातें हैं। इनका पुनः पुनः सुनना भी दुर्लभ है। पहले सत् का आदर करके उसे स्वीकार करने की बात है। स्वभाव को अंतरंग में स्वीकार करने में भी अनंत अनुकूल पुरुषार्थ है। इसे समझने पर ही संसार से छुटकारा हो सकता है।

यह मुक्ति के सर्वप्रथम उपायभूत सम्यग्दर्शन की बात है। गृहस्थदशा में भी सम्यग्दर्शन हो सकता है। और की तो बात ही क्या? आठ वर्ष की बालिका या पशु के शरीर में स्थित आत्मा भी ऐसा अपूर्व धर्म कर सकता है।

सच्ची श्रद्धा करने पर मोक्ष जाने का हर्ष प्रगट हो जाता है। संसार में जो जिसे बहुमूल्य मानता है, वह उसकी बात सुनते ही कैसा उछल पड़ता है? जिसकी रुचि होती है, उसकी प्रशंसा सुनने से उकताहट नहीं मालूम पड़ती, बारंबार उसका परिचय करने की और प्रशंसा सुनने की इच्छा होती है। इसीप्रकार भगवान आत्मा के स्वभाव का मूल्यांकन करने पर उसे समझने के लिये उसका बारंबार श्रवण-मनन करने में उकताहट मालूम नहीं होगी और उसे समझने के बाद भी उसकी रुचि कम नहीं होगी।

रागादि विकारीभाव सम्यग्दर्शन के विषय में प्रवेश नहीं करते। रागादि तो दूसरे क्षण नष्ट हो जाते हैं और ध्रुववस्तु सर्व अवस्थाओं में शाश्वत् रहती है। भाई! तू प्रयत्न करके समझ। आत्मा का स्वभाव सर्व अवस्थाओं में प्रकाशमान है। राग के समय भी द्रव्यस्वभाव मैला नहीं हो जाता, वह तो राग के समय भी अंतर में राग से भिन्न प्रकाशमान रहता है। स्वभावसम्मुख होकर जब देखो तब आत्मा राग से भिन्न प्रकाशमान है।

चैतन्य की सावधानी छोड़कर परपदार्थ और राग की महिमा में अटकना ही मोह है। जगत के जीवों! मोहरहित होकर अर्थात् पर तरफ की सावधानी छोड़कर आत्मस्वभाव का अनुभव करो, राग से हटकर स्वभाव में स्थिर होओ। आचार्यदेव अपनी दृष्टि से सभी आत्माओं में पूर्णता देखते हैं और जगत को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हमारी भाँति तुम भी

मोहरहित होकर आत्मस्वभाव का अनुभव करो, शांत और निराकुल आत्मस्वभाव में स्थिर होओ—यही सब का ध्रुवपद है।

आत्मस्वभाव की महिमा छोड़कर पर की महिमा करने से आत्मा का अनुभव नहीं होता। जब तक व्यवहार की, राग की या निमित्त की महिमा रहेगी तब तक आत्मस्वभाव की महिमा नहीं होगी और आत्मस्वभाव की महिमा आये बिना आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! तू मोहरहित होकर आत्मा के सम्यक्स्वभाव का अनुभव कर।

इसप्रकार आचार्यदेव शुद्धनय के विषयभूत आत्मा के अनुभव करने का उपदेश देते हैं।

भूतं भान्तमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बंधं सुधी-
र्यद्यन्तः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात्।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ॥१२॥

यदि कोई ज्ञानीजीव भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों काल में कर्मों के बंध को अपने आत्मा से तत्काल भिन्न करके तथा कर्मोदय के निमित्त से होनेवाले मिथ्यात्व को अपने बल से रोककर अथवा नाश करके अंतरंग में अभ्यास करे अर्थात् देखे तो यह जाननेयोग्य प्रगट महिमावंत आत्मा निश्चल, शाश्वत, कर्मकलंक-कीचड़ से रहित अनुभव में आता हुआ स्वयं स्तुति करनेयोग्य देवस्वरूप विराजमान है।

देखो! यहाँ आत्मा को देव कहा है। आत्मा स्वयं ही अपना देव है, उसका अनुभव करने के लिये आचार्यदेव सभी जीवों को आमंत्रित करते हैं। हे जीव! तुम्हारी चैतन्यनिधि तुम्हारे पास ही है। अंतर में शाश्वत चैतन्यभगवान पड़ा है, उसका अनुभव करो। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल के कर्मबंध को आत्मा से भिन्न करके आत्मा का अनुभव करो। कर्मबंध को आत्मा से भिन्न करो—यह कथन तो निमित्त की अपेक्षा है। वास्तव में आत्मा चैतन्यस्वभाव की ओर झुका, तब कर्मों को भिन्न किया ऐसा कहा जाता है। स्वभाव की दृष्टि होने पर मिथ्यात्व की उत्पत्ति ही नहीं होती, अतः मिथ्यात्व का नाश किया—ऐसा कहा जाता है।

हे चिदानंद भगवान! तेरी शक्ति में गुप्तरूप से आनंद पड़ा है, उसकी अंतर्दृष्टि करके उसे व्यक्त कर। शक्ति का अवलंबन करके चैतन्यस्वभाव को देखे तो अपना आत्मा अपने अनुभव से ज्ञात होता है। जो सम्यग्दृष्टि त्रिकाल के कर्मबंध को अपने आत्मा से भिन्न जानकर भिन्न अनुभव करके मोह और अज्ञान को रोककर अथवा नाश करके अंतरंग में पृथक्त्व का अभ्यास करता है, वह अपने को अपने में ही स्पष्टतः असंगरूप देखता है। इसप्रकार स्वानुभव से जाननेयोग्य प्रगट महिमावंत शुद्धात्मा को शुद्धनय द्वारा भलीभाँति जाना जा सकता है।

इस जीव ने शुद्धस्वभाव को पर से भिन्नरूप अनुभव करने का अभ्यास अनादिकाल से कभी नहीं किया और शुद्धनय के द्वारा देखने पर 'मैं विकाररहित त्रिकालज्ञानरूप हूँ'—ऐसा कभी नहीं माना। अपने को सदा अशुद्धपर्यायरूप और पुण्य-पाप के भावरूप माना किंतु ऐसी पर्यायदृष्टि से कभी धर्म नहीं होता।

पर्याय में अल्पज्ञता और विकार है, परंतु उसका आदर करने से शांति नहीं मिलती। अनादि से जीव ने पर का, विकार का और अल्पज्ञता का आदर किया; परंतु इनके आदर से कभी शांति नहीं मिली। अंतर में स्वानुभव से ज्ञात होने योग्य पूर्णानंद स्वभाव शक्तिरूप में पड़ा है, उसकी महिमापूर्वक समीप जाकर अनुभव करे तो शांति प्रगट हो।

स्वानुभवगम्य प्रगट महिमावंत चतुर्गति भ्रमणरहित नित्यस्वभाव ही स्तुति करने योग्य देव है। अंतरंग स्वभावदृष्टि से उसे देखने का अभ्यास करके देखे तो वह अंतरंग में ही विराजमान है। स्तुति करनेवाला भी स्वयं और स्तुति करने योग्य देव भी स्वयं है। यदि स्वयं स्तुति करनेवाला और स्तुति करने योग्य अन्य हो तो द्वैत हुआ, इसमें तो शुभराग हुआ। आत्मा को शाश्वत देवरूप पहचानकर उसकी महिमा किये बिना कोई लाभ नहीं होता; इसलिये पर की महिमा छोड़कर आत्मा की प्रतीति करने के लिये कहते हैं।

स्वभाव में बुद्धि का विस्तार न होकर रागादि में बुद्धि का विस्तार होना मोहभाव है। अंतर्मुख झुकाव से अंतर की पूर्ण शक्ति व्यक्त होती है। 'मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ, अन्य नहीं'—बारंबार ऐसे अभ्यास से शक्ति व्यक्त होती है। सिद्ध भगवान में जो शक्ति व्यक्त है संसारी जीव में भी वैसे ही रूप में शक्ति अभी अप्रगट है।

अंतर में विराजमान कर्म-कलंक-पंक से रहित निर्मल पूर्णशक्तिवाले देव का

अवलंबन लेना ही धर्म है। अंतर में दृष्टि करने से भगवान का दर्शन होता है। अपना आत्मा स्वयं ही भगवान है। अल्पज्ञ पर्याय में परमात्मा को शोधने से वह नहीं मिलेगा। स्वभाव में विद्यमान परमात्मशक्ति में शोधने से परमात्मा प्राप्त होगा।

हिरण कस्तूरी की सुगंध बाहर ढूँढ़ता है परंतु यह सुगंध मेरी ही नाभि में विद्यमान कस्तूरी की है ऐसा विश्वास नहीं करता। इसीप्रकार अपने में परमात्मा होने की शक्ति है परंतु स्वयं को स्वयं की शक्ति का विश्वास नहीं आता और हिरण के समान बाहर ढूँढ़ता रहता है।

आत्मा स्वयं आनंदरस से भरपूर है; परंतु उसे भूलकर बगीचे की हवा, आम के रस आदि इंद्रिय-विषयों में यह जीव सुख मानता है। परंतु भाई! इस अशुभराग में तो सुख नहीं है, परंतु दया-दान आदि के शुभराग में भी आनंद नहीं है। शुद्धनय से देखा जाये तो अतीन्द्रिय आनंदकंद सर्व कर्मों से रहित अविनाशी चैतन्यदेव अंतरंग में विराजमान है। पर्यायबुद्धिवाला बहिरात्मा परपदार्थों में या शुभाशुभराग में सुख खोजता है, जो कि अज्ञान है।

सर्वज्ञ भगवान ने सभी आत्माओं को अपने ही समान स्वतंत्र घोषित किया है, सभी की पूर्ण प्रभुता घोषित की है; किंतु जिसे देहादि परपदार्थों में मूर्च्छा है, उसे 'मैं पूर्ण परमात्मा हूँ' यह बात कहाँ से रुच सकती है? जहाँ पान-बीड़ी और चाय के बिना एक दिन भी न चलता हो, थोड़ी सी निंदा या अपमान होने पर भारी क्षोभ हो जाता हो, और स्तुति या प्रशंसा सुनकर हर्षोन्मत्त होकर अर्पित हो जाता हो; वह अपनी प्रभुता का विश्वास कहाँ से कर सकेगा?

एकबार रुचिपूर्वक 'मैं पूर्ण हूँ, निरावलंबी हूँ, ज्ञायक हूँ'—ऐसी श्रद्धा से स्वरूप का यथार्थ आदर करके स्वाश्रय के द्वारा प्रभुता को स्वीकार करे तो पराश्रय की पकड़ छूट जाती है।

पुकार-पुकार कर कहते हैं कि.....

सर्वज्ञ, संत और शास्त्र पुकार-पुकार कर कहते हैं कि सर्व प्रथम आत्मा को जानो, आत्मा का अनुभव करो। अनुभव के बिना एक कदम भी आगे नहीं चल सकते। आत्मा का परमार्थस्वरूप बताते हुए एक ही बात की है कि सर्व प्रथम आत्मा को जानकर उसका अनुभव करो। समयसार की ५वीं गाथा में भी कहा है कि 'मैं जो कहता हूँ, उसे अपने अनुभव में प्रमाण करो।'

— पूज्य श्री कानजीस्वामी

स्वभावदर्शन और विभावदर्शन

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की १३वीं-१४वीं गाथा तथा तत्संबंधी कलशों पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथाएँ इसप्रकार हैं —

तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलिमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं॥१३॥
चक्खु अचक्खू ओही तिण्णि वि भणिदं विहावदिट्ठि त्ति।
पज्जाओ दुवियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो॥१४॥

ज्ञानोपयोग के समान दर्शनोपयोग भी स्वभाव और विभाव के भेद से दो प्रकार का है। जो केवल, इंद्रियरहित और असहाय है; वह केवलदर्शन स्वभाव-दर्शनोपयोग है।

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन, विभावदर्शन कहे गये हैं। पर्याय दो प्रकार है—स्वपरापेक्ष और निरपेक्ष।

यह दर्शनोपयोग के स्वरूप का कथन है। चैतन्य अनुविधायी परिणाम वह उपयोग है। उसमें से ज्ञानोपयोग का वर्णन हो चुका है। अब आगे दर्शनोपयोग का वर्णन करते हैं।

जिसप्रकार ज्ञानोपयोग बहुविध भेदोंवाला है, उसीप्रकार दर्शनोपयोग भी वैसा ही है। वहाँ प्रथम, उसके दो भेद हैं—स्वभावदर्शनोपयोग और विभावदर्शनोपयोग।

उनमें से स्वभावदर्शनोपयोग भी दो प्रकार का है—कारणस्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग।

कारणस्वभावदर्शन तो त्रिकाल है और कार्यस्वभावदर्शन नया प्रगट होता है।

दर्शन अथवा दृष्टि के दो अर्थ हैं—(१) सामान्य प्रतिभास और (२) श्रद्धा। जहाँ जो अर्थ घटित होता हो वहाँ वही अर्थ समझना चाहिये। दोनों अर्थ जहाँ गर्भित हों वहाँ दोनों ही

समझना चाहिये। दृष्टि और दर्शनोपयोग दोनों निर्विकल्प होने से यहाँ टीकाकार ने उन दोनों को गर्भितरूप से ले लिया है। कारणदृष्टि और कारणदर्शनोपयोग इन दोनों को यहाँ साथ-साथ लिया है।

वह कारणदृष्टि कैसी है? कारणदृष्टि तो सदा पावनरूप और औदयिकादि चार विभावस्वभावों से अगोचर ऐसे सहज परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है, जो कारणसमयसाररूप है, निरावरण जिसका सवभाव है, जो निजस्वभाव सत्तामात्र है, परमचैतन्य सामान्यस्वरूप है, जो अकृत्रिम परम स्व-स्वरूप में अविचल स्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है, जो नित्य-शुद्ध-निरंजन ज्ञानस्वरूप है और जो समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रुओं की ध्वजा के नाश का कारण है—ऐसी आत्मा की वास्तविक स्वरूप श्रद्धानमात्र ही है। अर्थात् कारणदृष्टि तो वास्तव में शुद्धात्मा की स्वरूपश्रद्धामात्र ही है।

यहाँ परमपारिणामिकस्वभाव को चार भावों से अगोचर कहा है—सो वह तो उस पारिणामिक स्वभाव का ही अवलंबन लेना चाहिये, ऐसा बतलाने के लिये कहा है। वास्तव में तो उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभावों से वह पारिणामिकभाव गोचर होता है—अगोचर नहीं है; किंतु वह तीनों भाव क्षणिकपर्यायरूप हैं, उनके अवलंबन से विकल्पोत्पत्ति होती है। अरे! क्षायिकभाव के लक्ष से भी विकल्प ही उत्पन्न होता है, इसलिये उन्हें विभाव कहा है।

औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक यह चारों भाव अपेक्षितभाव होने से विभावस्वभाव परभाव कहे गये हैं। एक सहज परमपारिणामिकभाव को ही सदा पावनरूप निजस्वभाव कहा है। चार विभावभावों का आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव का आश्रय नहीं होता। परमपारिणामिकभाव का आश्रय करने से ही सम्यक्त्व से लगाकर मोक्षदशा तक की दशायें प्राप्त होती हैं।

जिसमें क्षायिकभाव की भी अपेक्षा नहीं—ऐसा त्रिकाल, निरपेक्ष, एकरूप परमपारिणामिकभाव है; उसी के आश्रय से धर्म होता है। उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव यद्यपि हैं तो धर्मभाव, तथापि उनके आश्रय से धर्म होता नहीं है। धर्म तो पारिणामिकभाव के आश्रय से ही होता है। इसलिये उस पारिणामिकभाव का आश्रय कराने के लिये चार विभावभावों से उसे अगम्य कहा है।

उत्पाद-व्यय से रहित त्रिकालश्रद्धा को भी यहाँ स्वरूपश्रद्धा कहा है। यह ध्रुवरूप है, इसे त्रिकालदर्शन भी कहते हैं तथा त्रिकालीस्वरूपश्रद्धा भी कहते हैं।

यह आत्मा के दर्शनोपयोग के स्वरूप का कथन है, यहाँ कारणस्वभाव दर्शनोपयोग में त्रिकालीश्रद्धा को भी लिया गया है।

दर्शनोपयोग के दो भेद हैं—स्वभावरूप और विभावरूप। स्वभावरूप दर्शनोपयोग कारण और कार्य के भेद से दो प्रकार का है। अब उसका स्वरूप कहते हैं।

कारणस्वभाव दर्शनोपयोग अर्थात् कारणदृष्टि कैसी है? कारणदृष्टि तो शुद्धात्मा के स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है। कैसा है आत्मा? सदा पावनरूप है, तीनों काल विकाररहित शुद्धस्वभावरूप है, जो औदयिकादि चारों विभावभावों से अगोचर ऐसे सहज परमपारिणामिक -भावरूप है, कारणसमयसार है, त्रिकालनिरावरण उसका स्वभाव है तथा निजस्वभाव-सत्तामात्र है और परम चैतन्य सामान्यस्वरूप है। अपने अकृत्रिम परमस्वरूप में त्रिकाल अविचलस्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप है और नित्यशुद्धनिरंजनज्ञानस्वरूप है—ऐसे आत्मा की त्रिकालीश्रद्धारूप कारणदृष्टि है।

पुनः वह आत्मा समस्त दुष्टपापोंरूप वीर शत्रुओं की सेना की ध्वजा के नाश का कारण है। अपनी पर्याय में विभाव है, वही शत्रु है। राग-द्वेष और मोह ही शत्रु की सेना है। शुद्धात्मा की भावना करने पर उस सेना का नाश हो जाता है। ऐसे आत्मा के स्वरूपश्रद्धानमात्र कारणस्वभाव दृष्टि है—यह त्रिकाल है। आत्मा में त्रिकाल वर्तता हुआ जो दर्शन का उपयोग है, उसे कारणस्वभावदर्शनोपयोग कहते हैं।

अब कार्यस्वभावदर्शनोपयोग को कहते हैं और उसके साथ परमावगाढ़ क्षायिक सम्यक्त्वरूप जो कार्यस्वभाव दृष्टि प्रकट होती है, वह भी समाविष्ट कर दी है।

वह कार्यस्वभाव दृष्टि कैसी है? वह त्रिकाल नहीं है, वह तो दर्शनावरणी और ज्ञानावरणी के क्षय से उत्पन्न होती है। कार्यदर्शनोपयोग और कार्यदृष्टि क्षायिकजीव के अर्थात् अरहंत भगवान के होती है।

क्षायिकजीव कैसा है? जिसने सकलविमलकेवलज्ञान से तीन लोक कोजाना है, अपने आत्मा से उत्पन्न होनेवाले परम वीतराग सुखामृत का समुद्र है एवं यथाख्यात नाम के

कार्यशुद्धचारित्र स्वरूप है। यह कार्यदृष्टि संपन्न ऐसे सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव को प्रकटी हुई पर्याय की बात है।

इसप्रकार ज्ञान, सुख और चारित्र तीनों की बात है। ऐसे सर्वज्ञ भगवान को कार्यस्वभावदृष्टि और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग होते हैं।

वह भगवान सादि अनंत, अमूर्त, अतीन्द्रिय स्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार-नयस्वरूप हैं। तीर्थंकर परमदेव शुद्धसद्भूतव्यवहारनयस्वरूप हैं। वह शुद्धसद्भूतव्यवहारनय सादि-अनंत अमूर्तिक और अतीन्द्रियस्वभाववाला है।

भगवान के स्वयं तो नय होते नहीं, किंतु साधकजीव केवली भगवान के स्वरूप का विचार करता है, तब उसको ऐसे नय होते हैं।

ऐसे तीर्थंकर भगवान भव्य जीवों के द्वारा प्रत्यक्ष वंदनीय हैं। सिद्ध भगवान भी वंदनीय हैं, परंतु वह परोक्ष हैं और तीर्थंकर भगवान प्रत्यक्ष हैं। ऐसे भगवान के केवलज्ञान की तरह यह कार्यदृष्टि भी युगपत् लोकालोक में व्यापनेवाली है।

केवली के स्वयं नय नहीं होते, वे तो पूर्ण हो गये हैं, नयातीत हो गये हैं; उनके श्रुतज्ञान नहीं है, अपितु केवलज्ञान है; नय तो श्रुतज्ञानी के ही होते हैं। केवली का विचार करने पर साधकजीव के शुद्धसद्भूतव्यवहारनय होता है, इसलिये भगवान को भी उस नयस्वरूप कह दिया है। अर्थात् ज्ञानादि दशा भी त्रिकाली नहीं है, नयी प्रकट हुई है, अतः वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है; आश्रय करनेयोग्य तो त्रिकाल एकरूपस्वभाव ही है।

त्रिकाली स्वरूपश्रद्धान तो निश्चय है और जो कार्यस्वभावदृष्टि प्रकट हुई है, वह व्यवहार है। कार्यदृष्टि तो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय का विषय है और आत्मा में त्रिकाल कारणस्वभावदर्शनोपयोग है, वह शुद्ध निश्चयनय का विषय है—यह बात उसमें आ जाती है। उस त्रिकाली का आश्रय करना योग्य है, क्योंकि उसी के आश्रय से निर्मल कार्य प्रकट होता है।

देखो, आत्मा उपयोगस्वरूप है। उसमें (१) त्रिकाल कारणस्वभाव ज्ञान उपयोग (२) त्रिकाल कारणस्वभाव दर्शन उपयोग अथवा त्रिकाली सहज स्वरूपश्रद्धान—यह दोनों निश्चयनय के विषय हैं। (१) कार्यस्वभाव ज्ञान उपयोग (२) कार्यस्वभाव दर्शन उपयोग—यह दोनों व्यवहारनय के विषय हैं। इनमें से शुद्धनिश्चयनय के विषय का अवलंबन

करना ही मोक्ष का कारण है। उपर्युक्त चारों ही प्रकार स्वभावरूप हैं। इस भाँति कार्य और कारणरूप से स्वभावदर्शनोपयोग कहा। विभावदर्शनोपयोग अग्रिम गाथा में होने के कारण वहीं कहा जावेगा।

स्वभावदर्शनोपयोग के साथ स्वरूपश्रद्धा को समाविष्ट कर दिया है। यद्यपि श्रद्धा और दर्शन उपयोग का लक्षण भिन्न-भिन्न है, तथापि दोनों सामान्यरूप हैं; इसलिये यहाँ दर्शनोपयोग में श्रद्धा का भी समावेश कर लिया है। 'जीव उपयोगमय है' उसका यह वर्णन चल रहा है।

अब तेरहवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकमेकमेव, चैतन्यसामान्यनिजात्मतत्त्वम्।
मुक्तिस्पृहाणामयनं तदुच्चैरेतेन मार्गेण बिना न मोक्षः ॥२३॥

दृशि-ज्ञप्ति-वृत्तिस्वरूप (दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमता हुआ) ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व, वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्धमार्ग है; इस मार्ग के बिना मोक्ष नहीं है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपपर्यायवाला अभेद आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है; अथवा दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप जो त्रिकाली एकरूप चैतन्यसामान्य आत्मतत्त्व है, वही मोक्ष का मार्ग है। जो त्रिकाल दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप आत्मा है और जिसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप पर्याय प्रकट हुई है—ऐसा जो चैतन्यसामान्य आत्मा मोक्षार्थियों को मोक्ष का प्रसिद्धमार्ग है। मुमुक्षुओं को यह मार्ग प्रसिद्ध है—इसके अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग से मोक्ष नहीं है।

अब चौदहवीं गाथा की टीका का अर्थ चलता है। जिसप्रकार मतिज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम में (जीव) मूर्त वस्तु को जानता है, उसीप्रकार चक्षुदर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्त वस्तु को देखता है।

मतिज्ञान से अंतर का स्वसंवेदन आत्मा करे, यह बात यहाँ गौण है; यहाँ तो पर के जानने की अपेक्षा से बात है। सम्यक्मतिश्रुत-ज्ञान तो आत्मा को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करता है। स्वरूप को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करे और मूर्त-अमूर्त दोनों को जाने—ऐसा सम्यक्मतिज्ञान है, किंतु यहाँ दर्शनोपयोग का स्वरूप समझाना है इसलिये मतिज्ञान को भी मूर्त को ही जाननेवाला

कहा है। उसी की तरह चक्षुदर्शनोपयोग से जीव मूर्त पदार्थ को देखता है। जिसप्रकार श्रुतज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम से (जीव) श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत में कथित मूर्त-अमूर्त समस्त वस्तुसमूह को परोक्ष रीति से जानता है, उसीप्रकार अचक्षुदर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम से (जीव) स्पर्शन, रसन, घ्राण और कर्ण द्वारा उसके योग्य विषयों को देखता है।

यहाँ इंद्रियों के विषयों की बात ली है। यद्यपि मन से भी अचक्षुदर्शनोपयोग होता है, किंतु यहाँ तो त्रिकाल कारणस्वभाव की महिमा बतलाने के लिये चक्षु-अचक्षुदर्शन का बहुत स्थूल वर्णन किया है।

जिसप्रकार अवधिज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम से (जीव) शुद्ध पुद्गलपर्यंत (परमाणु तक) मूर्तद्रव्य को जानता है, उसीप्रकार अवधिदर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम से (जीव) समस्त मूर्त पदार्थों को देखता है, अवधिज्ञान उदय और क्षयोपशम भाव को भी जानता है; परंतु यहाँ तो 'परमाणु को जानता है' मात्र इतनी बात ली है।

भगवान के केवलज्ञान के साथ वर्तता जो केवलदर्शन उपयोग है, वह स्वभाव है और चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शन विभाव है।

उपयोग का कथन करने के बाद अब पर्याय का स्वरूप कहते हैं।

'परिसमन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः' अर्थात् जो सर्व ओर से भेद को प्राप्त हो वह पर्याय है। शुद्धकारणपर्याय के लिये भी यह व्याख्या लागू पड़ेगी। उसे पर्याय कहने पर भी वह है तो द्रव्यार्थिकनय का विषय ही। त्रिकाली सामान्य में वर्तमान विशेषरूप भेद पड़ा है इसलिये उसे भी पर्याय कहा है। परंतु वह पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है।

पर्याय का ग्रहण कहा, उसमें स्वभावपर्याय छहों द्रव्यों में साधारण है, अर्थपर्याय भी है, वाणी और मन के अगोचर है, अति सूक्ष्म है, आगम-प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य है, तथा षट् हानि-वृद्धि के भेदों सहित है अर्थात् अनंत भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि और अनंत गुण वृद्धि सहित होती है। इसीप्रकार वृद्धि की तरह हानि पर भी घटित कर लेना चाहिये।

यह निरपेक्ष स्वभावअर्थपर्याय है, वह छहों द्रव्यों में है, सूक्ष्म आगमप्रमाणरूप है।

अशुद्धपर्याय नर-नारकादि व्यंजनपर्याय है। इसमें स्व-पर की अपेक्षा आती है, अत: वह निरपेक्ष पर्याय नहीं है, अपितु 'स्वपरापेक्ष' विभावव्यंजनपर्याय है। व्यंजनपर्याय में शुद्धपर्याय लेने में नहीं आती—ऐसी इस टीका की शैली है।

अब चौदहवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं—

अथ सति परभावे शुद्धमात्मानमेकं, सहज गुणमणीनामाकरं पूर्णबोधम्।
भजति निशितबुद्धिर्यः पुमान् शुद्धदृष्टिः, स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ॥२४॥

परभाव होने पर भी, सहज गुणमणि की खानरूप और पूर्णज्ञानवाले शुद्धात्मा को, एक को ही, जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष भजता है, वह पुरुष परम श्रीरूपी कामिनी का (मुक्तिसुंदरी का) वल्लभ बनता है।

कैसे आत्मा को भजना चाहिये उसकी प्रशंसा करते हैं कि अहो! आत्मा की पर्याय में रागादि अशुद्ध परभाव होने पर भी, जो स्वाभाविक गुणमणि की त्रिकाल खान है, और जो त्रिकाली पूर्णज्ञानवाला है, ऐसे भगवान शुद्धात्मा को, एक को ही तीक्ष्ण बुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है।

तीक्ष्णबुद्धि उसे कहते हैं जो ज्ञान को अंतर्मुख करके त्रिकाल शुद्ध चिदानंद आत्मा में एकाग्र होकर उसको भजे, ऐसा पुरुष मोक्षदशा को प्राप्त करता है। शुद्धस्वभावरूपी मुक्ति परिणति को स्त्री की उपमा दी है। अरे आत्मा! चर्म की स्त्री का वल्लभ होने की अपेक्षा चैतन्य की भावना करके इस मुक्तिरूपी सुंदर स्त्री का वल्लभ बन जावे, तो उस मुक्ति का सादि-अनंत काल तक वियोग नहीं होगा। तीक्ष्णबुद्धि से त्रिकाल चैतन्यस्वभाव में एकाग्र होने पर जो मोक्षपर्याय प्रगट होती है, उसका कभी विरह नहीं होता। इंद्र को तो इंद्राणी का विरह-वियोग हो जाता है किंतु आत्मा को मुक्तिसुंदरी का विरह कभी नहीं होता।

जिस समय यह टीका रची गयी थी, उस समय अनेक राजा लोग स्त्री के कारण परस्पर युद्ध कर-करके मरते थे, अत: यहाँ टीकाकार ने सहजपने मुक्तिसुंदरी को स्त्री की उपमा देकर वर्णन किया है। अरे जीव! बाहर की स्त्री के लिये मरता है, अंतर में अपने चैतन्य का आश्रय करके मुक्तिरूपी सुंदरी का वल्लभ क्यों नहीं बन जाता? उससे तुझे सादि-अनंत सुख का भोग

होता रहेगा और कभी भी विरह नहीं होगा। जगत की स्त्री का तो वियोग होता है और फिर अनंत काल तक स्त्री का संयोग न भी मिले, किंतु यह मोक्षरूपी स्त्री ऐसी है कि सादि-अनंत काल तक उसका वियोग हो ही नहीं सकता।

जगत की स्त्री में सुख नहीं, अत: उसकी रुचि छोड़ और इस मुक्तिरमणी का भरतार बन जा। जो जीव त्रिकाली चिदानंदस्वभाव की भावना करते हैं, वे जीव मुक्तिसुंदरी के वल्लभ हो जाते हैं, अत: वही भावना करने जैसी है।

इति परगुणपर्यायेषु सत्सूत्तमानां, हृदय सरसिजाते राजते कारणात्मा।
सपदि समयसारं तं परं ब्रह्मरूपं, भज भजसि निजोत्थं भव्यशार्दूल स त्वम्॥२५॥

इसप्रकार पर गुण-पर्यायें होने पर भी, उत्तम पुरुषों के हृदय-कमल में कारण-आत्मा विराजमान है। अपने से उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को—कि जिसको तू भज रहा है उसको—हे भव्य शार्दूल (भव्योत्तम) तू शीघ्र भज; तू वही है।

मतिज्ञानादि विभावगुण, चक्षुदर्शनादि विभावगुण और रागादि परभाव—ऐसे पर गुण-पर्यायें होने पर भी साधक उत्तम पुरुषों की दृष्टि में तो भगवान कारणपरमात्मा विराजता है, त्रिकाल कारणपरमात्मा के ऊपर ही दृष्टि पड़ी है अर्थात् साधक के हृदय-कमल में कारणपरमात्मा ही विराजमान है, और पर्याय में परभाव भी हैं, किंतु उनके ऊपर दृष्टि नहीं है।

इसप्रकार यहाँ साधकजीव की बात है। जिसकी दृष्टि में कारणपरमात्मा विराजता है, वही वास्तव में उत्तम पुरुष है। निज से उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को—कि जिसे तू भज रहा है, उसे—हे भव्य शार्दूल! तू शीघ्र भज, क्योंकि तू वही है।

'निज से उत्पन्न' का अर्थ यह है कि अपने से ही त्रिकाल है, किसी ने इसे बनाया नहीं है। स्वयं परमब्रह्मस्वरूप समयसार है उसको तू भज तो रहा ही है, परंतु अब तू उसे शीघ्र भज! उग्ररूप से भज!! साधकदशा तो है, परंतु उग्ररूपेण कारणपरमात्मा में लीन हो जा। तू स्वयं ही वह कारणसमयसार है—उसे तू शीघ्र भज।

यहाँ स्वयं ही अपनी आत्मा को संबोधन करके कहते हैं कि हे आत्मा! तू अपने जिस कारणसमयसार को भजता है, उसे शीघ्र उग्ररूप से भज। जो जीव कारणसमयसार को भजता

है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करता है, उसको यहाँ भव्य शार्दूल कहा है।

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः।
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः॥
सनाथमपि जीवतत्त्वमनाथं समस्तैरिदं।
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्ध्यैसदा॥२६॥

जीवतत्त्व क्वचित् सद्गुणों सहित विलसता है—दिखायी देता है, क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है, क्वचित् सहजपर्यायों सहित विलसता है और क्वचित् अशुद्धपर्यायों सहित विलसता है। इन सबसे सहित होने पर भी जो इन सबसे रहित है, ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिये सदा नमता हूँ, भाता हूँ।

ऐसे गुण-पर्यायों से युक्त होने पर भी अर्थात् पर्याय में शुद्ध-अशुद्धपर्यायों के प्रकारों से सहित होने पर भी जो उन सबसे रहित है, ऐसे त्रिकाली एकरूप निरपेक्ष जीवतत्त्व को ही मैं सदा नमता हूँ—उसी को भाता हूँ।

शुद्ध और अशुद्ध पर्याय के ऊपर लक्ष्य नहीं है, इसलिये कहा कि उससे त्रिकाली आत्मतत्त्व रहित है। पर्याय में शुद्धता-अशुद्धता होने पर भी द्रव्यदृष्टि से तो जीवतत्त्व उससे रहित है—ऐसे शुद्धजीवतत्त्व को ही मैं अपनी भक्ति के लिये सदा नमता हूँ—भाता हूँ। ऐसी आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और रमणतारूप भावना ही मुक्ति का कारण होती है।

आत्म-स्वभाव का अनादर करके पुण्य-पाप की रुचि करना क्रोध है और आत्म-स्वभाव के आदर द्वारा पुण्य-पाप की रुचि छोड़ देना ही उत्तम क्षमा है।

— पूज्य श्री कानजीस्वामी

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

यहाँ ज्ञानमार्गणा की बात चलती है। उसमें पहिला भेद मतिज्ञान है। सम्यग्दृष्टि निश्चित करता है कि जिस समय अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा होना है—उस समय होता है। वह इंद्रिय के कारण या कर्म के क्षयोपशम के कारण नहीं है। ज्ञानगुण का स्वकाल निश्चित है, वही होने का है। आँख खुली हो तो जानना होता है और बंद हो तो जानना नहीं होता—यह गलत है। आत्मा वस्तु है, ज्ञान उसका गुण है और उसकी सम्यक् पाँच पर्यायें हैं। पर्याय उत्पादव्ययरूप हैं और गुण ध्रुवरूप हैं। अवग्रहादि मतिज्ञान की पर्याय हैं। शुद्धनय से गुणी आत्मा जाना जाता है, अशुद्धनय से अवग्रहादि की जो-जो पर्याय होती है, उसको वैसा जानता है। लेकिन वह भेदरूप है, इसलिये अशुद्धनय से जानता है। त्रिकाल वस्तु तो एकरूप है, उसको शुद्धनय जानता है।

यहाँ ज्ञानप्रधान आत्मकथन है, इससे पर्याय के भेदों को जाननेवाले नय को अशुद्धनय कहा है। समयसार में दृष्टिप्रधान अध्यात्मकथन है, इसलिये वहाँ पर्याय के भेदों को जाननेवाले नय को व्यवहारनय कहा है। अवग्रह, ईहा, आवाय, धारणा क्रमपूर्वक होते हैं। सम्यग्दृष्टि विचारता है कि मेरी पर्याय मेरे कारण हीन है, निमित्त कारण से नहीं है। हीन पर्याय का ज्ञान होने पर भी शुद्ध ओर की दृष्टि हटती नहीं है।

कोई कहता है कि चश्मा हो तो दिखता है न? 'नहीं'—चश्मे के कारण ज्ञान माननेवाला ज्ञान के वर्तमान को उड़ाता (नष्ट करता) है। जिसको वर्तमान पर्याय की स्वतंत्रता की जानकारी नहीं है, उसको द्रव्य की जानकारी नहीं है।

प्रश्न – तब फिर चश्मा किसलिये लगाते हो?

उत्तर – चश्मा कौन लगाता है? चश्मा लगाया जाता है, ऐसा जानता है। जड़ की अवस्था आत्मा नहीं कर सकता है।

प्रश्न – चश्मा लगाते हम प्रत्यक्ष देखते हैं, यह दार्शनिक प्रमाण है।

उत्तर – यहाँ एक पंडितजी आये हुये थे। उनने भी ऐसा कहा कि यह फ्रेम प्रत्यक्षरूप से

किसमें है ? प्रत्यक्षरूप फ्रेम में हो, इंद्रिय में हो, राग में हो, अथवा स्वयं के ज्ञान में हो; ज्ञान प्रत्यक्ष किसको होता है ? इंद्रिय नहीं, राग नहीं, मेरा स्वभाव ही ज्ञान है; ऐसा स्वयं का ज्ञानस्वभाव स्वतंत्र है। ऐसा जिसने निर्णय किया है, उसको ज्ञान आंशिक प्रत्यक्ष प्रगट हुआ है और ऐसा जीव दूसरे पदार्थों का निर्णय कर सकता है। दार्शनिक प्रमाण (साक्ष्य) कहाँ रहता होगा ? जड़ में रहता होगा ? 'नहीं'—जड़ में नहीं, जड़ के लिये नहीं, सारी दुनिया के पदार्थ स्वतंत्र हैं—ऐसा निर्णय कर स्वयं की ओर झुकाव कर जो स्वसंवेदन प्रगट हुआ, वह स्वयं को और पर को स्वतंत्र रीति से जानता है। यह दार्शनिक प्रमाण है।

प्रश्न – इसमें कार्य-कारण संबंध क्या हुआ ?

उत्तर – त्रिकालीद्रव्य कारण है, और सम्यग्ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, यह कार्य है। यहाँ सम्यक् मतिज्ञान की बात चलती है। सम्यग्दृष्टि जीव अशुद्धनय से मतिज्ञान की पर्याय को जानता है और इसप्रकार के ज्ञान की हीनता (अल्पता) बरतती है, ऐसा जानता है। उसीप्रकार दूसरे की भी पर्याय जैसी हो रही हो वैसी जानता है। लेकिन रुचि तो शुद्धस्वभाव पर ही है। इस धर्मी जीव को शुद्धनय और अशुद्धनय दोनों का ज्ञान होता है।

धर्मी जीव संयोग, वियोग और पर्याय को गौण कर त्रिकाली द्रव्य को उपादेय मानता है। आत्मा में श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की शुद्धि की वृद्धि करनेवाले को आत्मा का परम स्वभाव एकरूप अंगीकार करने जैसा है। ऐसी अंतर्मुख दृष्टि होती है, तब भी कितनी भेददशा है, उसका शुद्धनय से ज्ञान करता है। दोनों नय का ज्ञान एक साथ होता है। मैं परम पारिणामिकभाव एकरूप ज्ञायक हूँ, रागद्वेष-दया-दानादि का भाव यह अपराध है, अपने को जानता हुआ उसका व्यवहार से जाननेवाला हूँ—ऐसा धर्मी जीव जानता है। पर्याय में नवीन भाव उत्पन्न होता है और पुराना दूर होता है, यह अशुद्धनय का विषय है। अंश का (पर्याय) ज्ञान करने जैसा है लेकिन आदरणीय नहीं है, अंशी ध्रुवस्वभाव आदरणीय है।

यह मार्गणा अधिकार है। स्वभावदृष्टि से मार्गणा भी आत्मा की नहीं है, किंतु जो मार्गण बरत रही है (हो रही है) उसको जानता है; गति, इंद्रिय, कषाय, ज्ञान आदि की जो-जो अवस्था हो रही है, उसको जानता है; वह अवस्था पर के कारण से नहीं है, मेरे कारण से है—तब भी वह उपादेय नहीं है, मात्र शुद्ध आत्मा उपादेय है; ऐसा धर्मी जीव मानता है। ज्ञायक

का श्रुतज्ञान प्रमाण है—उसके दो पहलू हैं—एक त्रिकाल को जानता है और एक वर्तमान को जानता है, तब ज्ञान प्रमाण होता है। ऐसा ज्ञान होने के पश्चात् स्वयं के पुरुषार्थ द्वारा राग घटाने की योग्यता देखे तब व्रतादि प्रत्याख्यान होता है। इसके बगैर व्रतादि नहीं होते हैं।

यहाँ मतिज्ञान का प्रकरण चलता है उसके भेद - अवग्रह (जानने का प्रारंभ होना), ईहा (विचार करना), अवाय (निश्चय) और धारणा क्रमपूर्वक होते हैं। ये भेद इंद्रियों के कारण से नहीं, उसीप्रकार उल्टे-सीधे भी नहीं, स्वतंत्रपने से होते हैं। इसप्रकार धर्मीजीव वर्तमान भेद का ज्ञान करता है। अवग्रहादि स्वकाल में हैं, उसका अशुद्धनय से ज्ञान करता है और मेरा स्वरूप एकरूप ध्रुवनित्य है ऐसा भी ज्ञान करता है, स्वयं को जानता हुआ पर को जानता है।

शास्त्रादि का ज्ञान यह श्रुतज्ञान नहीं है, लेकिन आत्मा ज्ञानस्वरूप है ऐसा मतिज्ञान होने के पश्चात् आत्मा आनंदरूप है, ऐसे आनंद के वेदन का ज्ञान यह भावश्रुतज्ञान है। आनंद का वेदन यह चारित्रगुण की पर्याय है, लेकिन श्रुतज्ञान की पर्याय नहीं है; किंतु इस वेदन का ज्ञान होना यह श्रुतज्ञान है। आत्मा के भानसहित बारह अंग का ज्ञान लब्धरूप होकर उपयोगरूप होता है, यह श्रुतज्ञान है। यह ज्ञान की पर्याय त्रिकालीस्वभाव से भेदरूप है ऐसा बतलाने के लिये इसको अशुद्धनय का विषय कहा है। त्रिकाली आत्मा को शुद्धनय का विषय कहा है। कोई जीव पर से श्रुतज्ञान मानता है, उसको विषय विदित कराने के लिये श्रुतज्ञान स्वयं से है ऐसा भी बतलाते हैं।

श्रुतज्ञान सुनने से अथवा राग से नहीं होता है किंतु स्वयं की सामर्थ्य से होता है। यह श्रुतज्ञान परोक्षरूप से लोकालोक के स्वरूप को, छह द्रव्य को, नवतत्त्व, पंचास्तिकायादि के स्वरूप को यथार्थ जानता है। केवली भगवान प्रत्यक्ष जानते हैं। श्रुतज्ञानी परोक्ष जानता है, किंतु जैसा है वैसा जानता है। गणधर भगवान अंतर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना करते हैं। उस ज्ञान का विकास शुभराग के कारण अथवा भगवान की वाणी के कारण नहीं है। धर्मीजीव समझता है कि मैं आत्मा नित्यानंद ध्रुव हूँ, उसका ज्ञानगुण समय-समय पर परिणमित होता है।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि तब फिर आप भिन्न-भिन्न शास्त्रों के निमित्त क्यों कहते हो ?

उससे कहते हैं—पुस्तकादि परपदार्थों को कोई लाता नहीं है। उन पदार्थों की उस

काल में वैसी अवस्थाएँ होती हैं, उनको ज्ञान जानता है। समयसार, द्रव्यसंग्रहादि के कारण ज्ञान नहीं होता है, ज्ञान तो स्वयं से ही होता है।

अवधिज्ञानी मन-इंद्रिय के निमित्त बिना आत्मा से रूपीपदार्थों को द्रव्य-क्षेत्र-काल की मर्यादा में जानता है और समझता है कि यह ज्ञान क्रमपूर्वक हुआ है।

प्रश्न – तब फिर अवधिज्ञानी उपदेश क्यों करता है ?

समाधान – अवधिज्ञानी जीव वाणी को नहीं करता, वाणी निकली उसको जानता है। विकल्प आते हैं, उनको भी जानता है और सामनेवाला जीव स्वयं की योग्यता से समझता है, ऐसा जानता है।

प्रश्न – भगवान महावीर की वाणी केवलज्ञान होने के पश्चात् दो मास छह दिन में खिरी, तब वह (वाणी) गणधर आये इसलिये खिरी ?

समाधान – नहीं। वाणी बंद रही वह वाणी के कारण से रही और निकली वह भी वाणी के कारण से निकली है।

उसीप्रकार भरत चक्रवर्ती ने भगवान ऋषभदेव से पूछा कि इस सभा में ऐसा कोई जीव है जो आपके जैसा तीर्थंकर होगा ?

भगवान के इच्छा नहीं होती, उनको तो केवलज्ञान होता है। ऐसा प्रश्न पूछा जायेगा और वाणी निकलेगी—इन सब बातों की जानकारी पहिले से ही है। भरत के प्रश्न के समय वाणी, वाणी के कारण से सहज निकली कि मारीचि का जीव २४वाँ तीर्थंकर होगा अर्थात् लगभग एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम के पश्चात् वह तीर्थंकर होगा।

भरत ने सुना कि इतने लंबे समय बाद मारीचि की मुक्ति होगी। उनको (भरत) इसीप्रकार श्रुतज्ञान में ज्ञात हुआ। ऋषभदेव के पश्चात् अजितनाथ भगवान ५० लाख करोड़ सागरोपम व्यतीत होने के बाद हुये। और महावीर तो अंतिम तीर्थंकर हुये। अर्थात् प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के बीच बहुत लंबा समय व्यतीत हुआ। इतने लंबे समय तक मारीचि के जीव को संसार में रहना पड़ा और यह जीव इसके पूर्व पुरुषार्थ नहीं कर सकेगा। इस संबंध में भरत को शंका नहीं होती क्योंकि यह बात टलने की नहीं है।

अब मारीचि के अधिक भव सुने, इसलिये मेरे भी अनंत भव होंगे, ऐसी शंका भरत को

नहीं होती है, क्योंकि धर्मीजीव की दृष्टि स्वभाव पर है। स्वभाव में भव नहीं है, अल्प राग रहता है, वह अल्प समय में दूर होकर मुक्ति होगी। श्रुतज्ञानी को भव की शंका नहीं होती। श्रुतज्ञानी स्व को जानता हुआ विकल्प तथा राग-द्वेष को जानता है, तब भी यह आकुलता ज्यादा समय नहीं रहेगी, ऐसा वह जानता है। जिस जीव को शंका हो और कहे कि मेरे अनंत भव होंगे तब उसका ज्ञान स्वभाव-सन्मुख नहीं है, वह मिथ्याज्ञानी है।

इस मार्गणास्थान की चाहे जैसी पर्याय का भेद धर्मी जीव को बर्तता हो तब भी यह राग लंबे समय तक रहेगा ऐसी शंका उसको नहीं होती। क्रमबद्ध स्वीकार करनेवालों की दृष्टि स्वभाव पर रहती है। उनको भव की शंका नहीं होती, तब भी पर्याय को जानते हैं। धर्मीजीव को मतिज्ञान श्रुतज्ञान अल्प होता है, किसी को अवधिज्ञान अल्प होता है, इसलिये मुझको गणधर जितना बारह अंग का ज्ञान कब होगा? कब केवलज्ञान होगा? ऐसी शंका धर्मी जीव को नहीं होती। [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- पर्याय का बिगाड़ मिटकर पर्याय में सुधार कैसे हो?

उत्तर- पर्याय स्वयं ही पर का लक्ष्य करके बिगड़ी है, यदि वह स्वयं ही पर का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव का लक्ष्य करे तो स्वयं से ही स्वयं सुधर जाये। स्व का लक्ष्य करना ही पर्याय का सुधार है।

प्रश्न– क्या ज्ञानी की प्ररूपणा में असत् की प्ररूपणा भी आती है ?

उत्तर– नहीं, ज्ञानी की वाणी में असत् की प्ररूपणा नहीं आती। ज्ञानी के अस्थिरता तो होती है, किंतु उसकी प्ररूपणा में असत् कथन नहीं आता। व्यवहार से निश्चय होता है, राग से लाभ होता है अथवा राग से धर्म होता है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य कर सकता है—ऐसी प्ररूपणा को असत् प्ररूपणा कहते हैं।

प्रश्न– प्रवचनसार में विकार को शुद्धनय से जीव का कहने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर– विकार को जीव ने स्वयं किया है, वह निज अपराध का ही कार्य है, वह विकार कर्म से पुद्गल से उत्पन्न नहीं हुआ है—ऐसा बतलाने के लिये विकार को शुद्धनय से जीव का कहा है।

प्रश्न– आप प्रवचनसार की अपेक्षा समयसार का अत्यधिक बखान करते हो उसका कारण क्या ?

उत्तर– प्रवचनसार में ज्ञानप्रधान कथन है और समयसार में दृष्टि कराने के प्रयोजन का कथन मुख्य है। समयसार में विकार को पुद्गल के लक्ष्य से उत्पन्न होता होने से और वह जीव का स्वभाव-भाव न होने से उसकी दृष्टि छुड़ाकर द्रव्य की दृष्टि कराने का कथन मुख्य है और उस द्रव्यदृष्टि से ही सम्यग्दर्शन तथा मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है।

प्रश्न– तत्त्वों का स्वरूप अनुमान ज्ञान से विचार में आता है या अनुभव से—कृपया स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर– प्रयोजनभूत नवतत्त्वों का स्वरूप पहले अनुमानज्ञान से ध्यान में आता है, पश्चात् अनुभव होता है। प्रथम शकुन होता है, तत्पश्चात् ही उसका फल आता है न ? उसीप्रकार प्रथम अनुमानज्ञान से ख्याल में आता है, पश्चात् अनुभव होता है।

समाचार दर्शन

आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर सानंद संपन्न

उदयपुर :- पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित बीस दिवसीय बारहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर अपनी अनेक विशेषताओं के साथ सानंद संपन्न हुआ। इस शिविर में १३२ अध्यापक प्रशिक्षण में सम्मिलित हुए, उनमें से ११८ प्रशिक्षणार्थियों ने अच्छे अंकों में सफलता प्राप्त की।

प्रारंभ के तीन दिनों तक पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के मंगल प्रवचनों से समाज ने अपूर्व लाभ लिया। श्री बाबूभाई मेहता एवं डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रवचन तथा पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा द्वारा ली गयी प्रौढ़ कक्षायें तथा डॉ० भारिल्ल एवं पडित रतनचंदजी विदिशा द्वारा ली गयी प्रशिक्षण-कक्षायें प्रमुख आकर्षण का केन्द्र थी। श्री नेमीचंदजी पाटनी आगरा, श्री जवाहरलालजी विदिशा, श्री भरत चक्रवर्ती मद्रास, पंडित स्वतन्त्रजी गंजबासौदा तथा ब्रह्मचारी निर्मलकुमारजी दमोह के भी व्याख्यान हुए। प्रतिदिन प्रवचनों के पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता था। प्रात: ५ से रात्रि १० तक लगभग १० घंटे नियमित कार्यक्रम चलते थे, जिनमें समाज प्रत्येक ही कार्यक्रम में बड़े उत्साह से भाग लेती थी जो अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। दिन में दो बार बाल-शिक्षण की कक्षायें भी चलती थीं। बाल-शिक्षण की परीक्षा में लगभग ३०० बालक-बालिकायें सम्मिलित हुए।

प्रशिक्षण शिविर समारोह के मध्य श्रुतपंचमी के दिन विशेष आयोजन किया गया। प्रात: सामूहिक जिनेन्द्रपूजन एवं श्रुतपूजन विशेष भक्तिभाव से किया गया, पश्चात् विशाल शोभायात्रा निकाली तथा विद्वानों के प्रवचन एवं भाषण भी हुए। अंत के दिनों में दीक्षांत समारोह, प्रशिक्षणार्थी सम्मेलन, कुन्दकुन्द कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट का अधिवेशन तथा भा० वी० वि० पाठशाला समिति का अधिवेशन भी हुए जिनके समाचार पृथक् से दिये गये हैं। सभी कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए।

इस शिविर में भाग लेने के लिये कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, कलकत्ता, बम्बई आदि दूर-दूर प्रांतों के लोग पधारे थे। प्रतिदिन लगभग ६०० व्यक्तियों का सामूहिक भोजन होता था। भोजन एवं आवास व्यवस्था अति उत्तम प्रकार से की गयी थी। गंगावत परिवार, बंडी परिवार, श्री मांगीलालजी, पंडित देवीलालजी,

श्री लक्ष्मीलालजी, श्री अंबालालजी, श्री उग्रसेनजी बंडी, श्री कन्हैयालालजी टाया एवं टाया परिवार, श्री पीतमलालजी, श्री सुजानमलजी, श्री ए० के० जैन इंजीनियर एवं नवयुवक मंडल के सदस्य चौबीसों घंटे शिविर की सेवा में रहे। तत्त्वप्रेमी महिलाओं का भी भोजन व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

प्रशिक्षणार्थी सम्मेलन सानंद संपन्न

उदयपुर :- पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित शिविर शृंखला में दिनांक २२ मई से १० जून १९७८ तक उदयपुर में संपन्न हुए बारहवें शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में आगंतुक प्रशिक्षणार्थी बंधुओं का यह सम्मेलन दिनांक ९-६-७८ को श्रीमान् दयाशंकरजी श्रोत्रिय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। जिसमें प्रशिक्षणार्थी बंधुओं ने इस शिविर से जो ज्ञान प्राप्त किया, जो प्रेरणा पायी, उसको अपने शब्दों में व्यक्त किया। इस सम्मेलन का संचालन श्री ए० के० जैन ने किया।

मंगलाचरणोपरांत सर्वप्रथम श्री राकेश टाया उदयपुर वालों ने बताया कि इन बीस दिनों में हमें पूज्य श्री कानजीस्वामी, पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल आदि अनेक विद्वानों के आध्यात्मिक प्रवचनों से अपूर्व लाभ मिला। इतने थोड़े दिनों में इतने भारी ज्ञान का लाभ होगा; यह हमारी कल्पना से परे था। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि हम आपकी बीस दिनों की मेहनत सार्थक करेंगे एवं अपने यहाँ के छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ायेंगे और पढ़ने की प्रेरणा देंगे।

उदयपुर के ही श्री कीर्तिकुमार ने भी एक वीतराग-विज्ञान पाठशाला चलाने का संकल्प किया।

कु० सुलोचना, अहमदाबाद ने अपना उत्साह प्रदर्शित करते हुए कहा कि मैं अपनी माताजी की पाठशाला चलाने में सहयोग करूँगी। कु० सुलोचना की माताजी श्रीमती विमलाबेन परवार स्वयं अपनी दो लड़कियों के साथ प्रशिक्षण हेतु आयी हुई थीं और वे अहमदाबाद में नि:शुल्क एक वीतराग-विज्ञान पाठशाला चलाती हैं।

वर्तमान में श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के छात्र श्री शिखरचंद गुरसौरा ने अपनी करुण कहानी सुनाते हुए कहा कि जब मैं मुरैना विद्यालय में पढ़ता था, तब पंडितजी सोनगढ़ से प्रकाशित कोई भी शास्त्र किसी भी छात्र के हाथ में देख लेते थे तो वे बहुत

नाराज होते थे। तभी से मेरे मन में सोनगढ़ साहित्य के अध्ययन-मनन की आकांक्षा थी, वह सौभाग्य से अब पूरी हो रही है।

प्रतापगढ़ निवासी वरिष्ठ अध्यापक श्री सज्जनमलजी सावरिया, एम०ए०, बी०एड० ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बताया कि १०० पंचकल्याणकों से अधिक लाभ एक शिविर से है अर्थात् ज्ञान के क्षेत्र में पंचकल्याणकों की अपेक्षा इन शिविरों से अधिक लाभ है।

श्री दि० जैन संस्कृत कॉलेज जयपुर के अध्यापक श्री निर्मलकुमारजी बोहरा ने कहा कि यद्यपि मैंने जैनदर्शन में आचार्य परीक्षा पास की है, परंतु जो ज्ञान मुझे उसमें नहीं मिला वह इन बीस दिनों में मिला। इन्होंने बालबोध प्रशिक्षण परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया है।

इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि प्रांतों से पधारे मुमुक्षु प्रशिक्षणार्थियों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये और तत्त्वप्रचार में सहयोग देने का संकल्प किया तथा सभी ने पूज्य स्वामीजी के प्रति अगाध श्रद्धापूर्वक आभार व्यक्त किया।

सबके बाद में डॉ० भारिल्लजी ने अपने प्रशिक्षाणार्थी छात्राध्यापकों को संबोधित करते हुए उन्हें सदाचारी और नैतिक जीवन बिताने की प्रेरणा दी। अंत में अध्यक्ष महोदय ने हर्ष व्यक्त करते हुए शिविर के २० दिनों का कार्यक्रम जैसा देखा, सुना, उससे भारी संतोष और शांति का अनुभव किया और कहा कि ऐसे आध्यात्मिक शिविर से हमारी यह भूमि पवित्र हो गयी है।

— ए० के० जैन

भारतवर्षीय वी० वि० पाठशाला समिति का अधिवेशन संपन्न

उदयपुर :- दिनांक ९-६-७८ को भा० वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति का अधिवेशन श्री बाबूभाई मेहता की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। समिति के महामंत्री श्री नेमीचंदजी पाटनी ने संस्था का परिचय देते हुए संस्था द्वारा संचालित राज्यवार वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की जानकारी दी। यह समिति मध्यप्रदेश में १५९, राजस्थान में ४०, उत्तरप्रदेश में २५, गुजरात में २५, महाराष्ट्र में २५, दिल्ली में २, हरियाणा में १—कुल २७७ पाठशालाओं में से ९४ पाठशालाओं को अनुदान देती है। पंडित गोविंदरामजी द्वारा इन पाठशालाओं का विधिवत् निरीक्षण किया जाता रहा है।

इस समिति की महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा गुजरात में प्रादेशिक समितियाँ भी हैं जो अपने-अपने प्रदेशों में नवीन पाठशालायें खोलने एवं पुरानी पाठशालाओं की देखरेख का कार्य करती हैं। इस अवसर पर उपस्थित समाज में से २५ पाठशालाओं को अनुदान देने की

स्वीकृतियाँ प्राप्त हुईं। साथ ही प्रशिक्षणार्थियों ने लगभग इतनी ही नवीन पाठशालायें खोलने के संकल्प किये हैं।

समिति ने निर्णय लिया कि जो व्यक्ति ५ पाठशालाओं को ५ वर्ष तक अनुदान देगा उसे संस्था का संरक्षक बनाया जायेगा। इस स्कीम के अंतर्गत श्रीमान् सेठ रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता, श्री सेठ महेन्द्रकुमारजी सेठी जयपुर, श्री ताराचंदजी गंगवाल जयपुर, श्री सेठ भगवानदास शोभालालजी सागर, श्री सेठ राजेन्द्रकुमारजी विदिशा तथा श्री हीरालालजी काला भावनगर संरक्षक मनोनीत किये गये। स्व० साहू शांतिप्रसादजी पहले ही संरक्षक थे, उनके स्थान पर साहूश्री अशोककुमारजी को संरक्षक मनोनीत किया गया है। **—हेमचंद 'चेतन'**

श्री कुन्दकुन्द कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का तृतीय अधिवेशन संपन्न

उदयपुर :- दिनांक ९ जून ७८ को प्रशिक्षण शिविर के मांगलिक अवसर पर श्री कुन्दकुन्द कहान दि० जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट का तृतीय अधिवेशन श्री बाबूभाई मेहता की अध्यक्षता में सानंद संपन्न हुआ। सहस्त्रादिक स्थानीय नागरिक एवं देश के कोने-कोने से आये हुए साधर्मीजनों की उपस्थिति में श्री रतनलालजी गंगवाल कलकत्तावालों ने अधिवेशन का विधिवत् उद्घाटन किया। मंगलाचरणोपरांत ट्रस्ट के महामंत्री श्री धन्यकुमारजी बेलोकर ने गत वर्ष की प्रगति की रिपोर्ट एवं लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए बताया कि विभिन्न क्षेत्रों के जीर्णोद्धार हेतु ट्रस्ट ने गत वर्ष में ५५ हजार रुपये प्रदान किये। साहित्योद्धार के लिये दक्षिण भारत के प्रसिद्ध नगर बैंगलोर में एक शोध संस्थान प्रारंभ किया गया है, जिसके द्वारा प्राचीन हस्तलिखित दि० जैन शास्त्रों की फोटो कापी तैयार कराकर आवश्यकतानुसार अनुवाद आदि करके प्रकाशित किये जाने के लिये ट्रस्ट ने ७५ हजार रुपये का बजट पास किया है। भारत के दि० जैन तीर्थक्षेत्रों का सर्वेक्षण कार्य शीघ्र प्रारंभ करने की योजना है, इसके लिये १ लाख का बजट पास किया गया है। श्री नेमीचंदजी पाटनी ने ट्रस्ट की गतिविधियों की विस्तृत जानकारी दी। पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद एवं श्री बाबूभाई मेहता के भागीरथ प्रयत्नों और साथियों के सहयोग से इस अल्पावधि में ही ट्रस्ट को ६२ लाख रुपयों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। ट्रस्ट के उक्त कार्यों की समाज ने करतलध्वनि से भूरि-भूरि प्रशंसा की। अंत में श्री बाबूभाई मेहता ने अपने अध्यक्षीय भाषण में ट्रस्ट की गतिविधियों से अवगत कराते हुए आगामी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की।

घर बैठे प्रवचन योजना व प्रवचन प्रसार योजना

जिन मुमुक्षु भाईयों को पूज्य कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ घर बैठे लेना हो वे निम्न टेप की नकलें मंगा सकते हैं—समयसार गाथा ३२० (जयसेनाचार्यकृत टीका), समयसार गाथा ४९, अव्यक्त ४७ शक्तियाँ, ४७ नय, अलिंगग्रहण, नियमसार गाथा ३८ तथा ५०।

स्मरण रहे कि विगत १६ वर्षों से स्व० श्री नवनीतभाई झवेरी की ओर से उक्त टेप की नकलें आत्मार्थी बंधुओं को भेजी जाती रही हैं। वर्तमान में समयसार पर १९वीं बार हो रहे विशेष प्रवचन तथा समयसार कलश टीका पर हुए प्रवचनों के टेप की नकल तैयार हो रही हैं।

सोनगढ़ में पूज्य स्वामीजी के दोनों समय के प्रवचन नियमित रूप से टेप हो रहे हैं। जिस किसी मुमुक्षु भाई को प्रवचन की टेप उतरवाना हो उसे श्री चिमनलाल हिम्मतलाल शाह बम्बई की ओर से वैशाख सुदी दोज से एक वर्ष के लिये बिना मूल्य उतार देने में आयेगी।

—संपर्क-सूत्र : श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नैरोबी (अफ्रीका) में अभूतपूर्व धर्म प्रभावना

नैरोबी (अफ्रीका) :- यहाँ १५ लाख रुपये की लागत से बननेवाले जिनमंदिर का शिलान्यास समारोह दिनांक १७-६-७८ को सानंद संपन्न हुआ। श्री लालचंदभाई के प्रातः ८.३० से ९.३० तक तथा अपराह्न में ३ से ४ तक समयसार की ६९वीं गाथा पर तथा श्री बाबूभाई मेहता द्वारा रात्रि में ७.१५ से ८ तक तत्त्वचर्चा तथा ८.३० से ९.३० तक समयसार की गाथा ४ और ५ पर प्रवचन चल रहे हैं। दोनों विद्वानों के मार्मिक प्रवचनों से स्थानीय दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हो रही है।

आयोजकों एवं संवाददाताओं के नाम भेजें

दिगम्बर जैन महासमिति के गठन, प्रचार-प्रसार आदि के लिये दिगम्बर जैन समाज के समाजसेवी, रिटायर्ड भाई, युवक, महिलायें—जो अपना योग देना चाहें वे अपना नाम पूरे पते के साथ महासमिति कार्यालय को भेजें। साथ ही जो भाई अपने क्षेत्र की गतिविधियाँ भेजने का उत्तरदायित्व लेना चाहें वे भी संपर्क करें। जिससे उनका नाम संवाददाता सूची में सम्मिलित किया जा सके।

संपर्क-सूत्र : महामंत्री, दिगम्बर जैन महासमिति, बी ४५-५७, कनाटपैलेस, नयी दिल्ली

सरधना :- अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद की प्रबंध-समिति की बैठक में परिषद का आगामी अधिवेशन नवंबर माह में भिंड में करने का निश्चय किया गया। सेठ डालचंदजी जैन, सागर को सर्वसम्मति से परिषद का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। **—हुकमचंद जैन, मंत्री**

उज्जैन :- २५ जून, १९७८ को पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावाले तीन दिवस के लिये यहाँ पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला तथा समयसार पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। अध्यात्मरस से ओतप्रोत प्रवचनों को सुनने से समाज में अच्छी धर्मप्रभावना हुई।

— प्रदीप झांझरी

इंदौर :- विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी जैनधर्म शिक्षण संयोजन समिति के तत्त्वावधान में जैन दर्शन पर १५ जून से ३० जून तक आयोजित शिक्षण-शिविर विभिन्न कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुआ। शिविर में पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित धन्नालालजी ग्वालियर, पंडित कन्नूभाई दाहोद, ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी, तथा पंडित संतोषकुमारजी के पधारने से समाज ने अपूर्व लाभ लिया। नगर के विभिन्न स्थानों एवं तिलकनगर आदि कालोनियों में कक्षाओं एवं प्रवचनों का आयोजन किया गया। जैन सिद्धांत प्रवेशिका, छहढाला तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर नियमित रूप से कक्षायें चलती थीं। समाज में अच्छी प्रभावना हुई।

बरा (सागर, म०प्र०) :- यहाँ दिनांक ८-५-७८ से १३-५-७८ तक वेदी-प्रतिष्ठा समारोह सविधि संपन्न हुआ। इस अवसर पर समाज के आमंत्रण पर पधारे हुए विद्वान श्रीमान् ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठा के सुबह-शाम प्रवचन व शिक्षण-क्लास चलती थी। पंडित गोविंदप्रसादजी तथा श्री ताराचंदजी खडेरीवालों के भी प्रवचन हुए। स्थानीय श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों ने अनेक मनोरंजक व प्रभावनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

—अध्यक्ष, श्री दिगम्बर जैन समाज

आरोंन :- दिनांक ३ जुलाई ७८ से ७ जुलाई ७८ तक श्री जिनबिम्ब एवं वेदी प्रतिष्ठा का आयोजन श्री पंडित बाबूलालजी 'सौजन्य' अशोकनगरवालों के सान्निध्य में हो रहा है। स्थानीय विद्वान पंडित श्री मोतीलालजी कौछल्ल एवं चौधरी हजारीलालजी द्वारा शिक्षण की कक्षाएँ भी चलेंगी। **— कुसुमकुमार जैन, मंत्री**

ग्वालियर :- स्थानीय दि० जैन मंदिर, नया बाजार में श्रुतपंचमी पर्व पाँच दिवसीय

कार्यक्रम के साथ सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर पंडित धन्नालालजी प्रतिष्ठाचार्य, पंडित धर्मचंदजी शास्त्री, पंडित भगवतीप्रसादजी बरैया आदि विद्वानों के सारगर्भित प्रवचन हुए।

—सुभाषचंद जैन

एलोरा :- पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर श्री आर्यनंदी महाराज के सान्निध्य में सर्वश्री ब्रह्मचारी माणिकचंदजी चवरे, माणिकचंदजी भिसीकर एवं पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री की प्रेरणा से तीर्थरक्षा ध्रुवफंड में ७५,०००/- की स्वीकृति प्राप्त हुई।

— जयचंद डी० लोहाड़े, महामंत्री

विदिशा :- दिनांक ९-६-७८ से १४-६-७८ तक श्री वीतराग-विज्ञान स्वाध्यायमंदिर स्थापना दिवस एवं श्रुतपंचमी समारोह संपन्न हुआ। दशलक्षण विधान पंडित बाबूलालजी 'सौजन्य' अशोकनगर द्वारा विधिपूर्वक कराया गया। समाज के विशेष आमंत्रण पर पधारे हुए पंडित अभयकुमारजी जबलपुर एवं केशरीचंदजी 'धवल' के आध्यात्मिक, सरस एवं हृदयग्राही प्रवचन हुए। श्रुतपंचमी को जिनवाणी का चल-समारोह आयोजित किया गया।

— डॉ० महेन्द्रकुमार

उदयपुर :- दिनांक १८-६-७८ को आत्मार्थी नवयुवक मंडल के चुनाव श्री उग्रसेनजी बंडी के सान्निध्य में संपन्न हुए। सभी सदस्यों ने वीतरागवाणी का प्रचार व प्रसार करने का दृढ़ संकल्प किया।

— भरतकुमार बंडी, मंत्री

भावनगर :- उदयपुर शिविर से लौटते हुए पूज्य स्वामीजी चार दिन के लिये यहाँ रुके। दोपहर में 'बेनश्री के वचनामृत' पर आपके मार्मिक प्रवचन चलते थे। स्थानीय समाज में महती धर्म प्रभावना हुई।

—जतीशचंद

आवश्यक सूचना

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर की ग्रीष्मकालीन परीक्षाएँ दिनांक १५ व १७ जुलाई, १९७८ को होंगी। संबंधित केन्द्रों को प्रश्न-पत्र, रोल नंबर, परीक्षा कार्यक्रम आदि आवश्यक सामग्री भेजी जा चुकी है। जिन्हें न मिली हो वे तार द्वारा तुरंत सूचित करें।

—मंत्री, परीक्षा बोर्ड

पाठकों के पत्र

ग्वालियर (म०प्र०) से श्री प्रकाशचंदजी लिखते हैं —

आत्मधर्म द्वारा अकथनीय निर्मलता एवं शांति प्राप्त हुई है।

अकोला (महाराष्ट्र) से सौ० हुलासबाई कर्नावट लिखती हैं —

आत्मधर्म में अनंत ज्ञान की प्राप्ति के साथ वह आनंद मिलता है जो कि जीवन में कभी नहीं मिला। कुछ लोग कहते हैं कि आत्मधर्म तो पाँचवें गुणस्थानवालों के लिये उपयोगी है, बाकी लोगों के तो समझ से बाहर की बात है, पर हमें ऐसा नहीं लगता। यह तो बहुत ही सरलता से थोड़े शब्दों में ज्ञान का विवेचन है। 'इंटरव्यू' तथा 'ज्ञान–गोष्ठी' लोगों की गलत धारणा दूर करने में सहायक हैं। आत्मभाव जगाकर आत्मदर्शन कराने में आत्मधर्म पत्रिका अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

खड़ैरी (म०प्र०) से श्री नरोत्तमदासजी लिखते हैं —

आत्मधर्म की बड़ी प्रतीक्षा करता हूँ। क्योंकि प्रत्येक लेख सरल, सुबोध और सुंदर होने से हृदयंगम हो जाता है।

सांगोद (राज०) से श्री लक्ष्मीचंदजी जैन लिखते हैं —

इस पंचमकाल में आत्मधर्म का निकलना और पूज्य गुरुदेव का समागम हम जैसे तुच्छ बुद्धिवालों के लिये कल्याण का मार्ग प्रशस्त करनेवाला है। आत्मधर्म का रोजाना स्वाध्याय करते हैं। इसने तो हमारी दिशा ही बदल दी है।

देपालपुर (म०प्र०) से श्री परमानंदजी लिखते हैं —

आत्मधर्म पढ़ने में अत्यंत आनंद आता है। जब भी पढ़ता हूँ नया मालूम होता है। इसे पढ़ने से हमारे जीवन में नया मोड़ आया है और हमारी रुचि राग को छोड़कर वीतरागता में लग गयी है।

नये प्रकाशन (गुजराती में)

१. ज्ञानामृत	: रुपये १.२५	४. अनुभवप्रकाश	: रुपये १.००
२. योगसार	: रुपये ८.२५	५. चिद्विलास	: रुपये १.७५
३. मूल में भूल	: रुपये १.००	६. भगवान पारसनाथ	: रुपये ०.८०

डॉ० भारिल्लजी का स्वास्थ्य

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, संपादक आत्मधर्म, के स्वास्थ्य के संबंध में इन दिनों सैकड़ों पत्र प्राप्त हुए हैं। उदयपुर शिविर के पश्चात् जयपुर आने के बाद अपने पारिवारिक चिकित्सक हृदयरोग-विशेषज्ञ डॉ० वी०एस० बल्दवा की राय के अनुसार वे यहाँ के बड़े (एस०एम०एस०) हॉस्पीटल में भर्ती हो गये थे। अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि सारी जाँचे हो जाने के बाद यह निश्चित हो गया है कि उनके हार्ट संबंधी कोई बीमारी नहीं है। उदयपुर में जो तकलीफ हुई उसका कारण अत्यधिक श्रम लगता है।

वर्तमान में उनका पेट से संबंधित इलाज चल रहा है। उनको थकान न होवे उतना ही कार्य करने की राय दी गयी है। कमजोरी के अलावा उनका स्वास्थ्य साधारणतया ठीक है व सामान्यत: वे सभी कामकाज कर रहे हैं। चिंता की कोई बात नहीं है।

शुभचिंतकों, हितैषियों व मित्रों से प्राप्त पत्रों का व्यक्तिगत उत्तर देना संभव नहीं हो पा रहा है। इसके लिये क्षमा-याचना करते हुए हम उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। **—प्रबंध संपादक**

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें —

(१) मनिआर्डर फार्म भेजने पर भी बहुत से ग्राहकों ने अभी तक आत्मधर्म का नये वर्ष का शुल्क नहीं भेजा है। उन्हें जुलाई का अंक भेज पाना संभव नहीं हो पा रहा है। अत: अंक प्राप्त न होने की शिकायत लिखने के पूर्व कृपया यह देख लें कि आपने अगले वर्ष का शुल्क भेजा है या नहीं।

(२) जुलाई के आत्मधर्म की प्रतियाँ अभी तक की ग्राहक संख्या से कुछ अधिक छपायी गयी हैं। अत: जब तक यह प्रतियाँ स्टॉक में रहेंगी तब तक नये बननेवाले ग्राहकों को भेजी जा सकेंगी। कृपया शुल्क शीघ्र भेजें, ताकि जुलाई अंक आपको उपलब्ध हो सके। प्रतियाँ समाप्त होने पर नये बननेवाले ग्राहकों को अगस्त से ग्राहक बनाया जावेगा।

(३) 'बेनश्री के वचनामृत' पुस्तक लगभग १५ जुलाई तक सभी ग्राहकों को भेज दी जावेगी। जिन ग्राहकों के पास पुस्तक २० जुलाई तक भी न पहुँचे वे अपना नाम, पता व ग्राहक संख्या लिखकर सोनगढ़ को लिखें। जयपुर लिखने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि पुस्तकें सीधी वहीं से भेजी गयी हैं।

(४) पूर्व सूचनानुसार इस माह में ग्राहक संख्या में परिवर्तन नहीं कर सके हैं। कृपया परिवर्तित ग्राहक संख्या अगस्त माह के अंक से नोट करें।

अवश्य ध्यान दें!!

श्री लालचंदभाई के कार्यक्रम में परिवर्तन

जयपुर :- श्री लालचंदभाई मोदी, बम्बई के पूर्व निर्धारित कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन किया गया है। नये कार्यक्रम के अनुसार अब वे १३-७-७८ से २७-७-७८ की बजाय ३०-७-७८ से १३-८-७८ तक यहाँ रहेंगे। उनके साथ-साथ कुछ दिनों के लिये श्री बाबूभाई भी पधारेंगे। इसके पूर्व दिनांक २६-७-७८ से दिनांक ३०-७-७८ तक पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावाले यहाँ आ रहे हैं। उक्त अवसर पर पधारनेवाले आत्मार्थी बन्धु कार्यक्रम में परिवर्तन का अवश्य ध्यान रखें।

नोट :- महाविद्यालय के नये-पुराने सभी छात्र पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ११ जुलाई को ही उपस्थित हो जावें, क्योंकि उनके कॉलेज खुल जावेंगे। तथा पंडित नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर पधार रहे हैं, अत: उनकी न्याय की कक्षायें भी लगेंगी। उन दिनों में 'युगलजी' को बुलाने का भी यत्न चल रहा है। **— डॉ० हुकमचंद भारिल्ल**

पर्यूषण पर्व के अवसर पर
जैन साहित्य का बुक-स्टाल लगायें

जहाँ की समाज पर्यूषण पर्व के अवसर पर सोनगढ़ से विद्वानों को बुलाना चाहती है, उसे उक्त अवसर पर वहाँ सोनगढ़ व सोनगढ़ से संबंधित संस्थाओं से प्रकाशित तथा अन्य दि० जैन साहित्य का बुक-स्टाल अवश्य लगाना चाहिये तथा स्थानीय दातारों के सहयोग से जहाँ तक संभव हो उसे कम कीमत कर बिकवाने का प्रयत्न करना चाहिये। जो मंडल व समाज तदर्थ जो भी साहित्य मंगाना चाहें, वे सोनगढ़ व जयपुर लिखें ताकि उनके आर्डर का साहित्य उन्हें समय पर प्राप्त हो सके। **—संपादक**

सोनगढ़ समाचार

सोनगढ़ :- पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रातः समयसार पर तथा मध्याह्न 'बेनश्री के वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेव के मर्मस्पर्शी प्रवचन चल रहे हैं। उनका स्वास्थ्य ठीक है।

शिक्षण शिविर

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी सोनगढ़ में दिनांक १५-८-७८ से दिनांक ३-९-७८ तक शिक्षण शिविर होने जा रहा है। जिसमें पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों के अतिरिक्त माननीय विद्वद्वर्य श्री रामजीभाई, श्री खीमचंदभाई आदि विद्वान कक्षायें लेंगे। क्लास में निम्न पुस्तकें चलेंगी।

(१) उत्तम वर्ग - मोक्षमार्गप्रकाशक और जैनसिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला।

(२) मध्यम वर्ग - छहढाला, द्रव्यसंग्रह और जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला।

(३) जघन्य वर्ग - छहढाला और लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका।

शिविर में आनेवाले आत्मार्थी बंधु पुस्तकें अवश्य साथ में लावें। **— व्यवस्थापक**

प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर भी

पर्यूषण पर्व या अन्य अवसरों पर प्रवचनार्थ जानेवाले तथा मंडलों की दैनिक तत्त्वगोष्ठियों में प्रवचन करनेवाले प्रवचनकार बंधुओं के लिये गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की छत्रछाया में शिक्षण शिविर के साथ ही डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के निर्देशन में दिनांक १५-८-७८ से दिनांक ३-९-७८ तक सोनगढ़ में आयोजित किया जा रहा है। जिसमें डॉ० भारिल्लजी के अतिरिक्त विद्वद्वर्य श्री लालचंदभाई, श्री बाबूभाई एवं श्री नेमीचंदजी पाटनी आदि अध्यापन कार्य करेंगे। इसमें नयचक्र, आलापपद्धति, एवं मोक्षमार्गप्रकाशक के आधार पर नयों का ज्ञान तथा सामान्य रीति-नीति संबंधी ज्ञान कराया जायेगा। पुस्तकें जिनके पास हों लेते आवें, अन्यथा यहीं व्यवस्था की जावेगी। **—व्यवस्थापक**

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००

मोक्षमार्गप्रकाशक		प्रेस में
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४